मथुरा माहात्म्य

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादिका एवं सम्पादिका

डॉ० (श्रीमती) उमा भास्कर

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी) पीएच. डी.

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

मथुरा-माहात्म्य

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादिका एवं सम्पादिका

डॉ० (श्रीमती) उमा भास्कर

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी) पीएच. डी.

वृन्दावन शोध संस्थान

रमण रेती, वृन्दावन (उ० प्र०)

प्रकाशक :
वृन्दावन शोध संस्थान
रमणरेती, वृन्दावन - २८११२४

→ सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : प्रथम १९९४

मूल्य : सजिल्द - एक सौ पचास रुपये
पेपरबैक - एक सौ रुपया

टाइपसैटिंग :
श्री यमुना ग्राफिक्स
चूड़ी वाली गली, मथुरा
फोन : ४०३२५७, ४०६५३७

मुद्रक :
अनुभा प्रिन्टर्स, मथुरा

Mathurā Māhātmya

(With Hindi Translation)

Translated & Edited
by
Dr. (Smt.) Uma Bhaskar
M. A. (Sanskrit & Hindi) Ph. D.

Vrindaban Research Institute
Raman Reti, Vrindaban (U. P.)

Publisher :
Vrindaban Research Institute
Raman Reti, Vrindaban - 281124

® Copyright Reserved

Edition : First 1994

Price : Bound Edition Rs. 125/-
Paperback Edition Rs. 100/-

Typesetting
Shri Yamuna Graphics
Churi Wali Gali
Mathura - 281001
Phone : 403257, 406537

Printer :
Anubha Printers, Mathura.

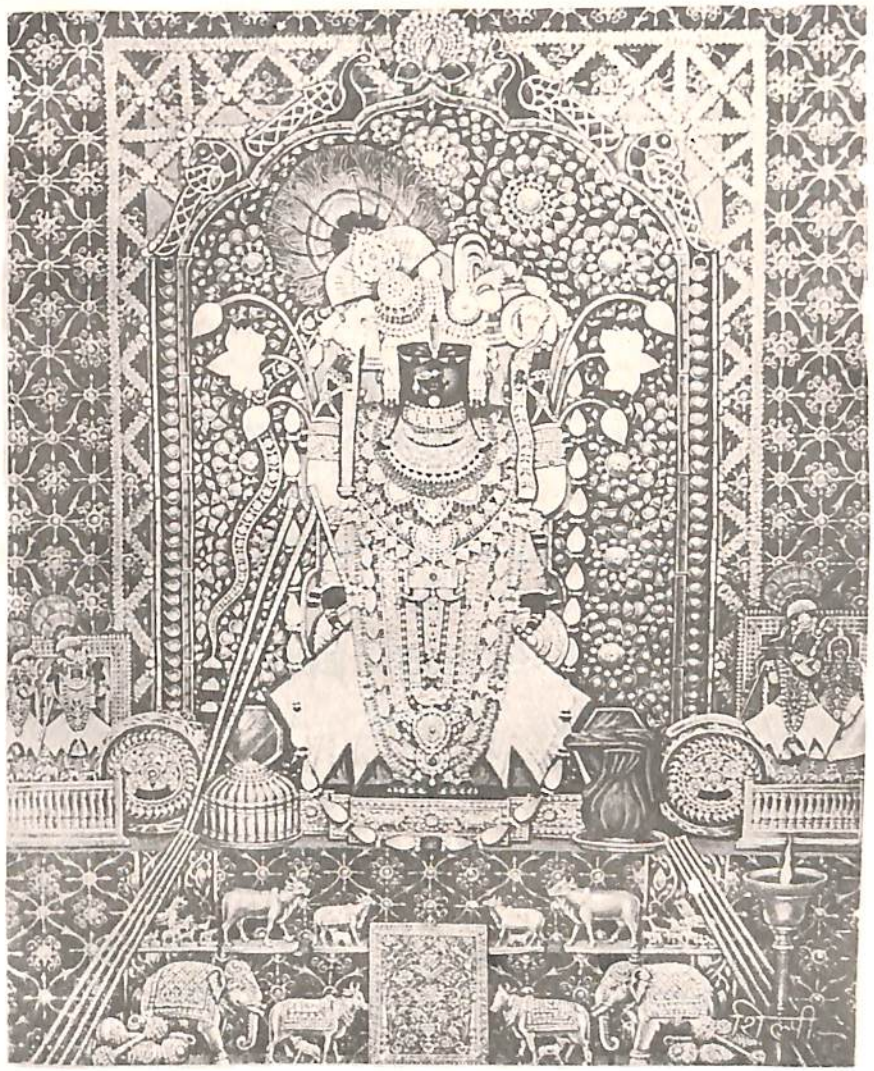

परम आराध्य श्री द्वारकाधीशजी महाराज
के श्री चरणों में समर्पित

समर्पणम्

श्री पुरुषोत्तमाचार्य - कराब्जेषु मुदार्प्यते ।
मथुरा माहात्म्य ग्रन्थः शोधसंस्थानतः खलु ॥

श्रीचैतन्य सम्प्रदायाचार्य
गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज
को
वृन्दावन शोध संस्थान
के
रजत जयन्ती वर्ष में
ससम्मान
समर्पित

डॉ० रमेश चन्द्र शर्मा
अध्यक्ष

डॉ० रामदास गुप्त
संस्थापक सभापति

शुभाशंसा

मथुरा-माहात्म्य वाराह पुराण का एक अंश है । वृन्दावन शोध संस्थान के महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथों में इसकी भी गणना है । ब्रज के अनेक लुप्त और महत्त्वपूर्ण स्थलों के परिचय के लिये मथुरा माहात्म्य एक अद्वितीय कृति है । इसके आधार पर ब्रज-क्षेत्र और विशेष रूप से मथुरा और आस-पास के तीर्थों का पुंनरुद्धार हो सकता है । ग्रंथ के समय एवं प्रणेता के बारे में अनेक मत-मतान्तर हैं, तथापि इसकी सांस्कृतिक गरिमा अक्षुण्ण है ।

डॉ० उमा भास्कर ने मथुरा-माहात्म्य का गहन अध्ययन कर समीक्षा प्रस्तुत की है और स्थलों के परिचय के बारे में कुछ अन्य ग्रंथों से भी सहायता ली है । मैं डॉ० श्रीमती भास्कर के प्रयास की सराहना करते हुए उन्हें साधुवाद देता हूँ । यह कार्य उन्होंने उस समय आरम्भ किया था, जब वह शोध संस्थान से सम्बन्धित थीं किन्तु अनेक कारणों से अभी तक पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी । आशा है ब्रज के प्रेमी और विद्वज्जन इस कृति का स्वागत करेंगे और शोधकर्त्ता इससे लाभान्वित होंगे ।

दि० २६ - २ - ६४

(डॉ० रमेश चन्द्र शर्मा)
अध्यक्ष, वृन्दावन शोध संस्थान एवं
महानिदेशक, राष्ट्रीय संग्रहालय
नई दिल्ली ।

सम्मतिः

वृन्दावन शोध संस्थान के अधीन श्रीमती उमा भास्कर द्वारा अनूदित मथुरा-माहात्म्य का आद्योपान्त अवलोकन किया । मथुरा-माहात्म्य का अभी तक हिन्दी अनुवाद तो दूर, मूल का पृथक् से प्रकाशन नहीं हुआ । इस दृष्टि से इसका और भी महत्त्व है ।

अनुवादिका ने मात्र अनुवाद नहीं किया, अपितु अपने शोधकार्य में जो विशिष्ट अध्ययन वाराहपुराण का किया, उसका उपयोग करते हुए अनेक ग्रन्थों का आलोकन कर बड़ी प्रामाणिकता पूर्ण टिप्पणी प्रस्तुत की हैं, जिन्हें पढ़कर विद्वज्जन भी संतुष्ट होंगे ।

भावुक व्रजरस-रसिकों को तो मथुरा की महिमा से अनुवाद के माध्यम से प्रथम बार परिचित कराकर संस्थान ने प्रशंसनीय कार्य किया है ।

ये अपने लेखन प्रयास से और भी अलभ्य कृतियों को प्रकाश में लावेंगी, ऐसा विश्वास है ।

मैं संस्थान तथा लेखिका के प्रयास की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ ।

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
प्राच्यदर्शन विद्यालय, वृन्दावन

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में भौगोलिक स्थिति तथा धार्मिक-आर्थिक कारणों से कतिपय क्षेत्रों तथा नगरों को विशेष गौरव प्राप्त हुआ । इनमें शूरसेन जनपद तथा उसके मुख्य केन्द्र मथुरा का उल्लेखनीय स्थान है । मध्यकाल में प्राचीन शूरसेन जनपद का नाम 'ब्रज' प्रसिद्ध हुआ । इस क्षेत्र में विकसित ब्रजभाषा ने उत्तर भारत में वही स्थान प्राप्त किया, जो किसी समय संस्कृत तथा तत्पश्चात् शौरसेनी प्राकृत का था ।

इस जनपद की 'शूरसेन' संज्ञा अयोध्या नरेश श्रीराम के लघु भ्राता शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ी । उन्होंने कुछ समय तक इस प्रदेश पर शासन किया ।

जनपद का शूरसेन नाम प्राचीन हिन्दू, बौद्ध एवं जैन साहित्य में तथा यूनानी लेखकों के वर्णनों में मिलता है । 'मनुस्मृति' में शूरसेन ब्रह्मर्षि देश के अन्तर्गत बताया गया है । प्राचीनकाल में ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षि देश को बहुत पवित्र समझा जाता था और वहाँ के निवासियों का आचार-विचार श्रेष्ठ एवं आदर्श रूप माना जाता था । ऐसा प्रतीत होता है कि शूरसेन जनपद की संज्ञा लगभग ईसवीं सन् के आरम्भ तक जारी रही । जब से वहाँ विदेशी शक-कुषाणों का प्रभुत्व हुआ, संभवतः तभी से जनपद की संज्ञा उसकी राजधानी के नाम पर मथुरा हो गयी । तत्कालीन तथा परवर्ती अभिलेखों में प्रायः मथुरा नाम ही मिलता है, शूरसेन नहीं । अधिकांश साहित्यिक ग्रन्थों में भी शूरसेन के स्थान पर मथुरा नाम मिलने लगता है । इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हो सकता है कि शक-कुषाणकालीन नगर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर गया कि लोग जनपद या प्रदेश को भी मथुरा नाम से पुकारने लगे और धीरे-धीरे जनपद का शूरसेन नाम जनसाधारण के स्मृति-पटल से उतर गया ।

प्राचीन शूरसेन जनपद का विस्तार साधारणतया दक्षिण में चम्बल नदी से लेकर उत्तर में मथुरा नगर के लगभग ७५ कि०मी० उत्तर कुरु राज्य की सीमा तक था । उसकी सीमा पश्चिम में मत्स्य जनपद से और पूर्व में पंचाल राज्य से मिलती थी । कुरु, पंचाल तथा मत्स्य जनपदों के साथ मथुरा के संबंध प्रायः मधुर रहे ।

सातवीं शती में जब चीनी यात्री हुएन-सांग यहाँ आया तब उसने लिखा कि मथुरा राज्य का विस्तार ५,००० ली (लगभग १२०० कि०मी०) था । इस

वर्णन से पता चलता है कि सातवीं शती में मथुरा राज्य के अन्तर्गत वर्तमान मथुरा-आगरा जिलों के अतिरिक्त आधुनिक भरतपुर तथा धौलपुर जिले और उत्तरी मध्य भारत का उत्तरी लगभग आधा भाग रहा होगा । दक्षिण-पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जेजाकभुक्ति (जिझोती, प्राचीन चेदि जनपद) की पश्चिमी सीमा से तथा दक्षिण-पश्चिम में अवंति (मालव) राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती होगी । सातवीं शती के बाद मथुरा राज्य की सीमाएं घटती गईं । इसका प्रधान कारण समीप के कन्नौज राज्य का विस्तार था, जिसमें मथुरा तथा अन्य पड़ोसी राज्यों के बड़े भू-भाग सम्मिलित हो गये ।

मथुरा का प्राचीन रूप 'मधुरा' मिलता है । 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत', 'हरिवंश' तथा अन्य अनेक पुराणों में इस नगरी के नाम मधुरा, मधुपुरी आदि मिलते हैं । एक जैन उपांग ग्रन्थ में 'महुरा' नाम आया है । यादव प्रकाश के 'वैजयन्ती कोष' में मथुरा के दो नाम 'मधूषिका' और 'मधूपद्मा' भी मिलते हैं । हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने ग्रन्थ 'अभिधानचिंतामणि' (पृ० ३६०) में मथुरा और 'मधूपद्मा' नाम दिये हैं । प्राचीन अभिलेखों में 'मथुरा' और 'मथुला' नाम आए हैं ।

वाल्मीकि रामायण और पौराणिक साहित्य से ज्ञात होता है कि 'मथुरा' नामकरण मधु नामक दैत्य या असुर के कारण हुआ । सबसे प्राचीन नगर जो मधु या उसके पुत्र लवण द्वारा बसाया गया, वह मधु के नाम पर मधुपुर या मधुपुरी कहलाया । इसके समीप घना वन 'मधुवन' कहलाता था । 'रामायण' से यह भी ज्ञात होता है कि यह नगर यमुना के पश्चिम तट पर बसा हुआ था । जब अयोध्या से श्रीराम के भाई शत्रुघ्न लवण को जीतने के लिए मधुपुरी चले तब उन्हें अपनी यात्रा में पहले गंगा पार करनी पड़ी और फिर यमुना; तब वे मधुपुरी के फाटक तक पहुँचे । इस मधुपुरी की पहचान आधुनिक महोली गांव से की गई है, जो वर्तमान मथुरा नगर से लगभग ६ कि०मी० दक्षिण-पश्चिम है । इसे अब मधुवन-महोली कहते हैं ।

मथुरा का मुख्य पर्वत गोवर्धन है । 'भागवत' आदि पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है । पौराणिक कथाओं से ज्ञात होता है कि कृषि प्रधान ब्रजवासियों के कल्याण और लाभ हेतु पर्वत का ठीक उपयोग श्रीकृष्ण द्वारा किया गया । इसी कारण उसे धार्मिक महत्व मिला और गोवर्धन गिरि की पूजा होने लगी । इसका विस्तार सात कोस माना जाता है और बहुसंख्यक भक्तों द्वारा इसकी परिक्रमा की जाती है । अरावली पर्वत श्रृंखला ब्रज के पश्चिम क्षेत्र में यत्र-तत्र फैली है । गोवर्धन गिरि उसी का भाग है ।

इस क्षेत्र की मुख्य नदी यमुना है । इसके प्राचीन नाम कालिंदी, सूर्यतनया, भानुजा आदि भी मिलते हैं । साहित्य, अभिलेखों तथा विदेशी यात्रियों

के विवरणों में यमुना के प्रचुर उल्लेख प्राप्त हैं । पश्चिमी उत्तर प्रदेश की यह प्रधान नदी है । प्राचीन कुरु, मत्स्य, शूरसेन तथा चेदि जनपदों के बड़े भागों को उपजाऊ बनाने में यमुना और उसकी सहायिकाओं का बड़ा योग रहा । पश्चिम की ओर से बढ़ते हुए रेगिस्तान से रक्षा हेतु इन नदियों तथा इनके तटवर्ती घने जंगलों की बड़ी उपादेयता रही है । इस समय फिर मथुरा के लिए मरुस्थल का खतरा बढ़ गया है ।

प्राचीन शूरसेन जनपद की उपजाऊ भूमि तथा वनस्पति की प्रचुरता के उल्लेख प्राचीन साहित्य में बहुत मिलते हैं । पशुओं में गाय-बैल तथा पक्षियों में मयूर का यहाँ विशेष महत्व रहा है ।

प्राचीन मथुरा का वर्णन : शत्रुघ्न के समय में और उनके बाद मथुरा या मथुरा नगरी के आकार और विस्तार का सम्यक् पता नहीं चलता । प्राचीन पौराणिक वर्णनों से इस संबंध में किंचित् जानकारी प्राप्त होती है ।

'हरिवंश' से ज्ञात होता है कि पुरानी मथुरा यमुना नदी के तट पर बसी हुई थी और उसका आकार अष्टमी के चन्द्रमा-जैसा था । उसके चारों ओर नगर दीवाल थी, जिसमें ऊँचे तोरणद्वार थे । दीवाल के बाहर खाई बनी हुई थी । नगरी धन-धान्य से पूर्ण और समृद्ध थी । उसमें अनेक उद्यान और वन थे । नगरी की स्थिति सब प्रकार से मनोज्ञ थी । मकान अट्टालिकाओं और सुन्दर द्वारों से युक्त थे । उनमें विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत स्त्री-पुरुष निवास करते थे । ये लोग रोग रहित और वीर थे । उनके पास बहुसंख्यक हाथी, घोड़े और रथ थे । नगर के बाजारों में सभी प्रकार का क्रय-विक्रय होता था और रत्नों के ढेर विद्यमान थे । मथुरा की भूमि बड़ी उपजाऊ थी और समय पर वर्षा होती थी । मथुरा नगरी के रहने वाले सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे । (**हरिवंश पुराण, पर्व प्रथम, अध्याय ५४**) ।

यमुना नदी का प्रवाह प्राचीनकाल से बदलता आया है । मधु और शत्रुघ्न के समय में यमुना की धारा उस स्थान के पास से बहती रही होगी जिसे अब महोली कहते हैं । वर्तमान मथुरा नगरी और महोली के बीच में बहुत से पुराने टीले दिखाई पड़ते हैं । इन टीलों से विविध प्राचीन अवशेष बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि उधर पुरानी बस्ती थी । इस भू-भाग की अधिक व्यवस्थित खुदाई होने पर संभवतः इस बात का पता चल सकेगा कि विभिन्न कालों में मथुरा की बस्ती में किस प्रकार परिवर्तन हुए ।

'वराह पुराण' से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरा नगरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के बीच बसी हुई थी और उनके बीच की दूरी अधिक नहीं थी । वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुना से काफी

दूर है । प्रतीत होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुना के बीच इतनी दूरी न रही होगी जितनी आज है । 'हरिवंश पुराण' में भी कुछ इस प्रकार का संकेत प्राप्त होता है । --**'गिरिगोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ।'** (**हरिवंश, I, 55, 36**)

पश्चिम जर्मनी के पुरातत्वज्ञ प्रोफेसर हर्बर्ट हर्टल ने मथुरा जिले में गोवर्धन नगर से लगभग १३ किलोमीटर दक्षिण सौंख नामक स्थान को उत्खनन हेतु चुना । भारत सरकार से आवश्यक अनुमति मिल जाने पर उन्होंने पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा के सहयोग से वहाँ १९६६ से १९७४ तक खुदाई का कार्य कराया । अन्य स्थलों की अपेक्षा सौंख में बरबादी बहुत अल्प रूप में हुई थी, अतः वहाँ खुदाई कराना समीचीन था ।

सोंख का उत्खनन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ । वहाँ ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के लगभग प्रारम्भ से लेकर कुषाणकाल के अंत तक के अवशेष मिले, जिनमें से कुछ का अत्यधिक महत्व है । खुदाई में अनेक दुर्लभ वस्तुएं प्राप्त हुई हैं । इनमें कुषाणकालीन वेदिकास्तंभ पर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हुई शालभंजिका की मूर्ति अत्यंत मनोरम है । वह पूर्ण सुरक्षित है और मथुरा की कुषाणकालीन उत्कृष्ट कला की परिचायक है ।

अन्य उपलब्ध वस्तुओं में एक सिरदल है, जिसमें नाग-नागी देवों को बीच में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है और दोनों ओर पंक्तिबद्ध पूजक प्रदर्शित हैं । इसी प्रकार नागयुक्त मकर, पंख फैलाए हुए गरुड़ आदि की आकृतियाँ भी दर्शनीय हैं । काँसे की अनेक कलात्मक कुषाण मूर्तियाँ भी खुदाई में मिली हैं । एक प्रतिमा शिव-पुत्र कीर्तिकेय की है, जिसमें उन्हें शक्ति धारण किये हुए दिखाया गया है । दूसरी मूर्ति में एक पुरुष प्याला लिए है और बाईं ओर माता-पुत्र प्रदर्शित हैं । मिट्टी की भी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं । इनमें महिषमर्दिनी दुर्गा विशेष उल्लेखनीय है, जो कुषाणकालीन है ।

कुछ समय पूर्व श्रीकृष्ण जन्मस्थान के समीप गोविन्दनगर नामक स्थान से दुर्लभ सामग्री मिली है । उससे ज्ञात हुआ है कि वहाँ कुषाण तथा गुप्तकाल में एक बड़ा बौद्ध केन्द्र था । प्राप्त वस्तुओं में अभय मुद्रा में बुद्ध की एक सुन्दर प्रतिमा मिली है । खड़े हुए बुद्ध की एक अभिलिखित मूर्ति भी उल्लेखनीय है । उस पर अंकित लेख के अनुसार इस मूर्ति का निर्माण गुप्त सं० ११५ (४३४ ई०) में गुप्त-सम्राट् कुमार गुप्त प्रथम के समय में उसी प्रवीण कारीगर यशदित्र के द्वारा हुआ जिसने जमालपुर वाली प्रतिमा का निर्माण किया था । लेख से यह भी पता चला है कि यशदित्र बौद्ध भिक्षु था । गोविन्दनगर से अन्य अनेक मूर्तियाँ शिलालेख तथा इमारती पत्थर भी मिले हैं ।

हाल में केन्द्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा मथुरा में कंकाली टीला के समीप श्री मुनीशचन्द्र जोशी के निर्देशन में उत्खनन कराया गया । इससे प्राचीन मथुरा के कालक्रम और विस्तार पर अच्छा प्रकाश पड़ा । खुदाई में कुषाणकालीन एक लघु जलाशय मिला । यह ६.१० मीटर लम्बा, ८.१० मीटर चौड़ा और ३.३६ मीटर गहरा है । इसका गोपथ पकी ईंटों से बना है । ताल में दोनों ओर कुंड हैं । खुदाई में मनके, मुहरें और मूर्तियाँ मिली हैं, जो अधिकांश कुषाणकालीन हैं ।

मथुरा और उसके आसपास के क्षेत्रों से प्रचुर मात्रा में प्राचीन अभिलेख, सिक्के, मुहरें, मूर्तियाँ, इमारती अवशेष तथा अन्य वस्तुएं उपलब्ध हुई हैं । उनसे न केवल ब्रज जनपद के प्राचीन इतिहास और संस्कृति पर प्रभूत प्रकाश पड़ा है, अपितु भारतीय पुरावृत्त की अनेक लुप्त कड़ियों को जोड़ने में उनसे सहायता मिली है । इससे भारतीय राजनय, धर्म-दर्शन-भाषा, साहित्य, कला और लोक-जीवन के अध्ययन में इस सामग्री का विशेष महत्व सिद्ध हुआ है ।

-- **कृष्णदत्त बाजपेयी**

विषय-सूची

				पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	:	कृष्णदत्त बाजपेयी	...	i - iv
प्राक्कथन			...	vii - xiii
स्थल-परिचय			...	xiv - xxiv
प्रथम अध्याय	:	मथुरातीर्थ प्रशंसा	...	१ - १०
द्वितीय अध्याय	:	मथुरा तीर्थ माहात्म्य	...	११ - १७
तृतीय अध्याय	:	यमुना तीर्थ प्रभाव	...	१८ - २२
चतुर्थ अध्याय	:	अक्रूरतीर्थ प्रभाव	...	२३ - ३३
पंचम अध्याय	:	मथुरा प्रादुर्भाव	...	३४ - ३७
षष्ठ अध्याय	:	यमलार्जुल तीर्थ प्रशंसा	...	३८ - ४४
सप्तम अध्याय	:	मथुरा तीर्थ प्रादुर्भाव	...	४५ - ५१
अष्टम अध्याय	:	मथुरा प्रदक्षिणा विधि	...	५२ - ५५
नवम अध्याय	:	मथुरा परिक्रमा प्रादुर्भाव	...	५६ - ६८
दशम अध्याय	:	देववन प्रभाव	...	६६ - ७०
एकादश अध्याय	:	चक्रतीर्थ प्रभाव	...	७१ - ७६
द्वादश अध्याय	:	कपिलवाराह माहात्म्य	...	८० - ८८
त्रयोदश अध्याय	:	अन्नकूट परिक्रमा	...	८६ - ६४
चतुर्दश अध्याय	:	कूप माहात्म्य	...	६५ - १०३

प्राक्कथन

पुराण-साहित्य हमारी अनादि एवं सनातन संस्कृति का प्राणाधार है । यह साहित्य अद्यावधि भारतीय साहित्य का उपजीव्य है । प्राचीन होते हुए भी यह चिरनवीन एवं शाश्वत है । मानव के ऐहिकामुष्मिक लोक कल्याण-साधन का सच्चा पथ प्रदर्शक है । एक ओर जहाँ सृष्टि की नियमावली का यथार्थ दर्शन करने के लिए श्रुतियों की अनुगामिनी स्मृतियाँ हमारे लिए विधान का निर्माण करती हैं, तो अनादिकाल से चली आती हुई जीवनगत अपूर्णता एवं मानव त्रुटियों को उचित मार्ग दिखाने के लिए यह साहित्य दिव्य ज्ञान-चक्षु है । इसमें वर्णित आख्यानोपाख्यानों के माध्यम से मानव जाति का मार्ग प्रशस्त हुआ है ।

संसार का सामान्यत: ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान, मानव-मस्तिष्क की कल्पना, मनुष्य के गन्तव्य एवं पाथेय का ज्ञान, दैविक, भौतिक, आध्यात्मिक विधानों का परिचय किंबहुना लोकजीवन के सम्पूर्ण पक्षों के सर्वांगीण विवेचन में कोई पक्ष ऐसा शेष नहीं रह जाता, जो पुराण साहित्य में न हो । कठिनतम जटिल दार्शनिक विषयों का सुनियोजन इस साहित्य की महनीय विशेषता है । मानव जीवन के लिए अक्षय ज्ञान का यह सञ्चित कोश है, जिसमें निमग्न होकर मनुष्य जीवन की सच्ची साधना प्राप्त कर सकता है ।

अष्टादश पुराणों में से अन्यतम 'वाराह पुराण' विभिन्न वैशिष्ट्यों को समेटे हुए है । अनेक आख्यान धार्मिकों के लिए आकर्षण के विषय हैं, जिनमें कोई न कोई पुण्य क्षेत्र अपने माहात्म्य की कथा का परिचायक है । सांस्कृतिक विवेचन में अनेक व्रत, दान, श्राद्ध आदि मानव को मोक्ष मार्ग तक ले जाने वाले हैं । तीर्थ-वर्णन में विभिन्न तीर्थस्थल उच्च-निम्न वर्ग, दरिद्र-धनाढ्य, राजा-रङ्क को एक स्तर पर खड़ा करने में समर्थ हैं । यहाँ जाति या वर्ग-भेद नहीं है । 'मथुरा-मण्डल' इस पुराण का प्राण तत्त्व है, जहाँ ब्रज का साकार चित्र उपस्थित हुआ है । यहाँ स्थित प्रत्येक स्थल का चुन-चुनकर वर्णन किया गया है । ब्रजभूमि का अणु-अणु श्रीकृष्ण के पादारविन्दों से धन्य हुआ है । कहीं उन्होंने क्रीड़ा की, कहीं दधि की कीच मचाई, कहीं सुख से बैठकर वेणुवादन किया, तो कहीं कंस जैसे दुर्दमनीय शत्रु का संहार किया । ब्रजभूमि श्रीकृष्ण की जन्मस्थली और क्रीड़ा-भूमि है, उसे 'माथुरं मम मण्डलम्' कहा है ।

मथुरा-मण्डल (ब्रज-मण्डल) भारत का रत्न-स्वरूप केन्द्र है । यहाँ का एक-एक रजकण वन्दनीय है । नाम-स्मरण मात्र से ही दिव्य प्रेम का स्फुरण होने लगता है । यहाँ स्थित वन, पर्वत, नदी, घाट, वृक्षादि भगवान् के स्वरूप

हैं । यह मान्यता प्रत्येक भारतीय के आस्तिक-हृदय में पुराकाल से लेकर आज तक विद्यमान है । यह स्थल केवल दर्शनीय ही नहीं, बल्कि उपासनीय भी है । उपासनीय क्यों न हो, क्योंकि यही भगवान् का दिव्यधाम है, साक्षात् विग्रह स्वरूप है । इसके माहात्म्य का बखान वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों में विशद रूप से हुआ है । जो स्थान आज व्रज-मण्डल कहलाता है, वह पुराणों में मथुरा-मण्डल के रूप में वर्णित हुआ है । विष्णु के अवतार वाराह भगवान् ने पृथ्वी देवी को मथुरा-मण्डल के अनेक तीर्थों, वनों, मन्दिरों और घाटों के सम्बन्ध में बताया और सब तीर्थों में अपना प्रिय स्थान कहा । इसकी आकृति पद्माकार है । बीस योजन में विस्तृत इसकी कर्णिका अर्थात् मध्य भाग मथुरा में दु:खों का निवारण करने वाले केशवदेव और वाराह भगवान् स्वयं विराजमान हैं ।

व्रज-मण्डल का क्रमानुसार वर्णन पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् वाराह ने पहले स्वयं व्रजयात्रा की, तदुपरान्त पृथ्वी को उसका महत्त्व बताया । इसी में वर्णित है कि वायुदेव ने सम्पूर्ण भू-मण्डल की परिक्रमा करके सारे तीर्थों की गणना की । उनके बाद ब्रह्मा, लोमश, नारद, ध्रुव, जाम्बवन्त, रावण और हनुमान ने तीर्थ-भ्रमण किया । षष्टिकोटि सहस्र और षष्टि कोटि शत तीर्थों का निवास व्रज-मण्डल में ही है । वायु ने बाह्य-मण्डल रेखा से परिभ्रमण किया । सुग्रीव, इन्द्र, पाँच-पाण्डव, मार्कण्डेय आदि ने अन्तर्ग्रही परिक्रमा की । इसी के आधार पर व्रज-यात्रा के अन्तर्ग्रही और बहिर्मण्डल यात्रा दो-भाग स्थिर हुए । विश्व के असंख्य तीर्थों की यात्रा में असमर्थ होने वाले जीव को व्रज-मण्डल की यात्रा करके संपूर्ण तीर्थयात्रा का फल प्राप्त हो जायेगा, यह उद्घोष सबसे पहले वाराह भगवान् ने किया ।

द्वादशवनों की प्रशंसा 'मथुरा-माहात्म्य' में की गई है । ये वन आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं । मधुवन, तालवन, कुन्दवन, काम्यकवन, बहुलवन, खदिरवन, महावन, लोहजङ्घवन, बिल्ववन, भाण्डीरवन और वृन्दावन श्रीकृष्ण की अनेक क्रीड़ाओं का परिचय देने वाले हैं । वैसे तो सभी वन भगवान् को प्रिय हैं, किन्तु बारहवाँ वन वृन्दावन अति प्रिय है । वृन्दा के द्वारा रक्षित यह वन यमलोक से मुक्ति दिलाने वाला है । मथुरा यदि कमल है तो वृन्दावन रसकोश । मथुरा जीवन का बाह्य सन्तुलन बनाने में समर्थ है, तो वृन्दावन रससञ्चरण में । 'वृन्दावन' शब्द के उच्चारण मात्र से ही अलौकिक रसानुभूति का द्वार उद्घाटित होने लगता है । संस्कृति और धर्म का ऊर्जा-स्रोत यह वृन्दावन जीवन को सरसता और चिन्तन को नित्यनूतनता प्रदान करने वाला प्राण-सञ्चारी केन्द्र है । शाश्वत सौन्दर्य और रससाधना का केन्द्र वृन्दावन प्रत्येक मानव को अद्भुत तुष्टि प्रदान करता है । जो एक बार यहाँ आ गया, यहीं का हो गया ।

मथुरा कृष्ण की जन्मस्थली है, अत: सर्वाधिक प्रिय है, प्रिय हो भी क्यों न ? अपनी जन्मभूमि से प्रेम सबको होता है । मथुरा जैसा पवित्र स्थान न पाताल में है न आकाश में, न मर्त्यलोक में । यहाँ स्थित घाट तीर्थरूप हैं । इसके अन्तर्गत आने वाले विश्रान्ति, प्रयाग, कनखल, तिन्दुक, सूर्य, चिन्तामणि, कोटि, वायु, संयमन, ध्रुव ऋषि, मोक्ष आदि घाट मुक्ति प्रदायक हैं । इनके वर्णन प्रसंग में आई छोटी-छोटी कथाओं ने इनके महत्व को बढ़ा दिया है । किस तीर्थ में ज़ाने से क्या फल मिलता है, कौन-कौन मनुष्य यहाँ के प्रभाव से मुक्त हो गये, ये सब कथा वृत्तान्त साथ-साथ वर्णित होने से पाठक, श्रोताओं के मन को आकृष्ट करते हैं ।

पुण्यसलिला यमुना की तटवर्तिनी मथुरापुरी सप्तपुरियों में श्रेष्ठ है । इसकी स्थापना असुरराज 'मधु' के नाम पर 'मधुपुरी' के रूप में हुई थी । सूर्यवंशी दशरथनन्दन शत्रुघ्न ने मधुसुत लवणासुर को मारकर अपना राज्य स्थापित किया ।

कृष्ण-प्रिया मथुरापुरी वैष्णव भक्ति की प्रमुख गढ़ी है । कृष्ण भक्ति के साथ ही शैव, शाक्त एवं गणेशोपासकों की भी प्रिय भूमि है । भूतेश्वरशिव यहाँ के कोतवाल हैं । भूतनाथ यदि यहाँ के नगरपाल हैं, तो देवी नगरकालिका । स्वयंभू रूप में विराजित शिव यहाँ के क्षेत्रपाल भी हैं । शिवपुराण के अनुसार 'भूतेशो यमुनातटे' में इंगित शिव द्वादश ज्योति उपलिंगों में भूतेश्वर के रूप में यहाँ विद्यमान हैं । सम्पूर्ण ब्रज में शिव के अति प्राचीन मन्दिर हैं । श्रीकृष्ण के अवतार के पश्चात् शिव का उनके दर्शन हेतु आना, श्रीकृष्ण द्वारा शैव उपमन्यु से दीक्षा ग्रहण करना, रासलीला दर्शन हेतु गोपीवेश में आना आदि पुराण प्रसिद्ध शिव महिमा के द्योतक हैं ।

प्राचीनकाल से ही यहाँ शक्ति की उपासना की परम्परा रही है । आज भी महाविद्या एवं चामुण्डा मन्दिरों की परिधि को 'अम्बिका वन' नाम से सम्बोधित किया जाता है । भूतेश्वर से गोकर्णेश्वर तक देवी के कई मन्दिर हैं । भारत प्रसिद्ध ५१ शक्ति पीठों में से एक मथुरा भी है, जहाँ सती के केश गिरे थे । इसके अतिरिक्त कात्यायनी पीठ स्वयं में महत्वपूर्ण पीठ हैं । सरस्वती की सर्वाधिक प्राचीन मूर्ति यहीं से मिली है । एकानंशा, योगमाया, महामाया एवं दुर्गा के विभिन्न रूप यहाँ प्रतिष्ठित हैं ।

जैन एवं बौद्ध धर्म भी यहाँ पनपे । नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव एवं महावीर का इस भूमि से गहरा नाता है । जम्बूस्वामी की तपोभूमि एवं सिद्धि-स्थली यही है । जैन धर्म का केन्द्र 'चौरासी' के रूप में आज भी मथुरा में स्थित है । स्वयं भगवान् बुद्ध यहाँ पधारे थे । विश्व की प्राचीन एवं श्रेष्ठ बुद्ध मूर्तियाँ मथुरा की ही देन हैं, जो आज भी मथुरा-संग्रहालय में सुरक्षित हैं । चीनी यात्री फाह्यान ने तत्कालीन मथुरा में सात सौ बौद्ध बिहार होने की सूचना

दी है । 'दिन्न' नामक सुप्रसिद्ध बुद्ध-मूर्ति-निर्माता यक्ष द्वारा घटित एवं नामांकित विशाल बुद्धमूर्ति उत्खनन के समय मथुरा से प्राप्त हुई ।

मथुरा का वैभव मुसलमान शासकों के काल में गहरे आघातों को सहता रहा । अकबर महान् शासक ने ब्रज के वैभव को पुनः स्थापित किया । विनाशकाल में मथुरा की जितनी भौतिक क्षति हुई, आन्तरिक शक्तियों ने घनीभूत होकर सांस्कृतिक अस्तित्व को उतना ही सबल बनाया । भक्ति आन्दोलन के प्रवाह में देश के कोने-कोने से आये आचार्यों और अनुगतों ने ब्रज का पुनर्गठन किया । धर्म के दिव्य-स्पर्श से कलाओं को चेतना मिली । रस-दर्शन के रूप में संस्कृति को अभूतपूर्व सिद्धि प्राप्त हुई । वर्तमान मथुरा मध्यकालीन मथुरा की झलक लिए हुए है । मथुरा में विश्राम घाट पर स्थित सतीबुर्ज, ईदगाह, मस्जिद, विभिन्न प्राचीन मन्दिर मध्यकालीन स्थापत्य का आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं । शिल्प को देखकर दर्शक विभोर हो जाता है । मथुरा आज उत्तर प्रदेश का एक विशाल सुविधा-सम्पन्न-नगर है । यातायात की सभी सुविधाएं विद्यमान हैं । प्राचीनकाल से ही मुख्य व्यापारिक केन्द्र है । यहाँ की भक्ति-प्रवण-सांस्कृतिक आत्मा आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश हेतु जन-जीवन को उद्यत कर रही है ।

तीन लोक से न्यारी मथुरा-नगरी और मथुरा-मण्डल की धार्मिकता आज भी सुरक्षित है । इसके साथ-साथ धर्म, भाषा, वाणिज्य का समन्वय होने के कारण मथुरा-समुद्र में से साहित्य, संस्कृति कला आदि रत्नों की प्राप्ति होती है ।

वृन्दावन शोध संस्थान से प्राप्त 'मथुरा-माहात्म्य' की जिस प्रति को मैंने चुना, अन्य पाण्डुलिपियों की अपेक्षा उसमें सर्वाधिक श्लोक एवं अध्याय हैं ।[1] देवनागरी लिपि में निबद्ध यह प्रति सुन्दर अक्षरों में लिखी गई है । इसमें ३५ पत्राङ्क (खुले पन्ने) हैं । लिपिकार ने अधिकांशतः विराम चिह्नों का प्रयोग नहीं किया है । कहीं-कहीं मात्राओं का अभाव है, यथा- सुम्रु के स्थान पर सुम्र लिखा गया है । विनिर्मुक्तों के स्थान पर विनिर्मक्त है ।

कहीं-कहीं मात्राधिक्य है– यथा भयंङ्करः के स्थान पर भयकूरः । अक्षरों की बनावट आधुनिक अक्षरों से भिन्न है –

यथा-विष्नोः (विष्णोः) तथा वाक्य (वाक्य), सोमवष्रिय दर्शनः - सोमवत्रिय दर्शनः । कृष्म - (कृष्ण) 'ख' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग किया गया है । यथा दुःष (दुःख) ।

अनेक स्थलों पर शब्दगत, अक्षरगत अशुद्धियाँ हैं, प्रकाशन सर्वथा शुद्ध और त्रुटियों से रहित हो, इसलिए लिपिगत अशुद्धियों को संशोधित किया गया

१- श्री वृन्दावन शोध संस्थान में सुरक्षित हस्तलिखित पाण्डुलिपि 'मथुरा-माहात्म्य' ACC. No. 2704, S.No. 988

है । अक्षरों की बनावट को भी यथावत् न रखकर आधुनिक प्रयोगों के अनुसार रखा गया है । कहीं-कहीं पाठगत अशुद्धियाँ हैं उनको भी व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध कर दिया गया है ।

'तीर्थ प्रभाव' नामक प्रथम-अध्याय में मथुरा तीर्थ का वर्णन है । कहा गया है कि ऐसा तीर्थ न तो पाताल में है, न अन्तरिक्ष में, जिसकी समता मथुरा से हो सके –

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे ।
समत्वं मथुराया हि प्रियं मम वसुन्धरे ॥(म०माहा० Follio 2A)

यह श्रीकृष्ण की जन्म स्थली है । वाराणसी, प्रयाग आदि भी इसकी समता में न्यून हैं । जब विष्णु शयन करते हैं, उस समय पृथ्वी पर विद्यमान सभी तीर्थ मथुरा में आकर निवास करते हैं । यहाँ विभिन्न तीर्थ हैं, जो आज विभिन्न घाटों के रूप में उन्हीं नामों से विद्यमान हैं । इन तीर्थों के साथ कोई न कोई घटना जुड़ी हुई है, जो उनके माहात्म्य की अवबोधिका है । यथा 'तिन्दुक' नामक नाई ने तिन्दुकतीर्थ में स्नान करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया । विरोचन के पुत्र बलि ने सूर्य की आराधना की थी । फलतः प्रसन्न होकर सूर्य ने चिंतामणि प्रदान की । इन घाटों पर कहीं-कहीं यमुना का प्रवाह नहीं है । पाप बढ़ने के कारण और वातावरण के अत्यधिक प्रदूषित होने से यमुना घाट छोड़कर दूर चली गयी है ।

प्रथम तीन अध्यायों में अविमुक्त तीर्थ, विश्रान्ति तीर्थ, प्रयाग तीर्थ, कनखल तीर्थ, तिन्दुक तीर्थ, सूर्य तीर्थ, ध्रुव तीर्थ, असिकुण्ड तीर्थ, संयमन तीर्थ, धारापतनक तीर्थ, नागतीर्थ, घण्टाभरणक तीर्थ, सोम तीर्थ, दशाश्वमेघ तीर्थ, मानस तीर्थ, विघ्नराज तीर्थ, अक्रूर तीर्थ और वायु तीर्थ रूप इन २४ घाटों का माहात्म्यपूर्ण वर्णन है । इसके साथ-साथ द्वादश वनों का और उनमें स्थित मंदिरों, जलाशयों का वर्णन है ।

चतुर्थ अध्याय में सुधन वणिक् का आख्यान है, जिसके संसर्ग से राक्षस राक्षसयोनि से मुक्त होकर मनुष्यत्व को प्राप्त हुआ । इसी संदर्भ में सत्य की प्रशंसा अनेक श्लोकों में हुई है –

सत्यमूलं जगत्सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥२७॥
सिद्धिर्लभन्ति सत्येन ऋषयो वेदपारगाः ।
सत्येन दीयते कन्या सत्यं जल्पन्ति ब्राह्मणाः ॥२८॥
सत्यं वदन्ति राजानः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।
सत्येन गम्यते स्वर्गे मोक्षं सत्येन गम्यते ॥२९॥

सत्येन सूर्यस्तपति सत्यात्सोमो विराजते ।
यमः सत्येन हरते सत्यादिन्द्रो विराजते ॥३०॥

(म० माहा० Follio 17B)

पांचवें अध्याय में वत्सक्रीडनक, भाण्डीर एवं वृन्दावन में स्थित विभिन्न पवित्र स्थलों का वर्णन है । महाकवि कालिदास ने वृन्दावन की उपमा कुबेर के उद्यान से दी है –

'वृन्दावने चैत्ररथादनूने' (रघुवंश ६ ।.५०)

षष्ठ अध्याय में यमलार्जुनक तीर्थ, भाण्डह्रद, अर्कस्थल, सप्तसामुद्रिक कूप, वीरस्थल, कुशस्थल, पुष्पस्थल आदि प्राचीन स्थानों का महत्व वर्णित है । ब्रजाङ्गनाओं के साथ रमण, क्रीड़ा आदि के दर्शन के लिए शिव ने गोपीवेश धारण किया । गोपियों ने मंगल-पाठ करके शिव का अभिषेक किया । गोपीश्वररूप शिव की स्थापना मातलि ने की ।

सातवें अध्याय में मथुरा मंडल का सीमा विस्तार २० योजन कहा गया है । सात द्वीपों में स्थित तीर्थ देवशयन काल में मथुरा में निवास करते हैं--

सप्तद्वीपेषु तीर्थानि पुण्यायातनानि च ।
मथुरायां गमिष्यन्ति प्रसुप्तेच सदा मयि ॥(म० माहा० ७ । ३)

अष्टम अध्याय में धरणी वाराह भगवान् से पूछती हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी मंडल पर विद्यमान तीर्थों का भ्रमण करना सबके लिए सुलभ नहीं है, अतः कोई सुगम मार्ग बतायें । उत्तर में वाराह भगवान् ने मथुरा-परिक्रमा और सप्तद्वीपस्थ तीर्थों का फल समान बताया–

सप्तद्वीपेषु यत्तीर्थभ्रमणाच्चफलं लभेत् ।
प्राप्यते चाधिकं तस्मात् मथुरा भ्रमणीयते ॥

(म० माहा० ८ । १३)

नवें अध्याय में मथुरा-परिक्रमा-मार्ग वर्णित है तथा उस मार्ग में आने वाले विविध तीर्थ, मंदिर, जलाशयों आदि का माहात्म्यपूर्ण वर्णन है । कार्तिक शुक्ला नवमी को परिक्रमा का विधान कहा गया है । पुराणोक्त मथुरा परिक्रमा इसी तिथि को आज भी भक्तजन बड़ी श्रद्धा भक्ति से करते हैं ।

दशम और एकादश अध्याय में देव वन और चक्रतीर्थ का महत्व आख्यान के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

द्वादश अध्याय में कपिल वाराह तीर्थ का पुण्यफल वर्णित है । ब्रह्महत्या पाप से लिप्त ब्राह्मण ब्रह्म-हत्या के चिह्न से अंकित था । उसके हाथ से रक्तधारा प्रवाहित होती रहती थी । अनेक तीर्थ भ्रमण के पश्चात् भी वह ब्रह्महत्या चिह्न

से मुक्त न हो सका । मथुरा में स्थित बैकुंठ तीर्थ में स्नान करने से वह रक्तधारा लुप्त हो गई । कपिल वाराह प्रतिमा को रावण ने लंका में स्थापित किया, जिसे वह इन्द्र भवन से लाया था, रावण वध के पश्चात् श्रीराम उसी प्रतिमा को अयोध्या ले आये । तत्पश्चात् जब शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध किया हर्षित हुए राम से उस प्रतिमा को प्राप्त किया और मथुरा में उसकी स्थापना की ।

त्रयोदश और चतुर्दश अध्यायों में अन्नकूट अर्थात् गोवर्धन पर्वत के संबंध में वर्णन हुआ है । इसका विस्तार दो योजन अर्थात् १६ मील है । मथुरा के पूर्व में इन्द्र तीर्थ, दक्षिण में यम तीर्थ, पश्चिम में वरुण तीर्थ एवं उत्तर में कुबेर तीर्थ हैं । सोमवती अमावस्या को पिण्डदान करने का विधान है । अन्य अनेक पवित्र कुण्ड और मंदिर हैं । यहीं मानसी गंगा तथा राधाकुण्ड विद्यमान हैं ।

इस ग्रन्थ में 'मथुरा-माहात्म्य' के श्लोकों का अनुवाद सरल भाषा में दिया गया है और इसमें आये हुए विभिन्न पवित्र और धार्मिक, स्थलों का परिचय दिया गया है यद्यपि आज उनमें से कुछ स्थलों के नाम परिवर्तित हो गये हैं, कुछ स्थान उस रूप में नहीं हैं, तदपि आधुनिक नाम देते हुए उनकी स्थिति को स्पष्ट किया है ।

भारतीय संस्कृति के प्राण, जगद्गुरु श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं क्रीड़ाभूमि मथुरा-मण्डल के माहात्म्य पर आधारित यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण होने पर भी अद्यतन अप्रकाशित ही था । यह वाराह पुराण का अंश है, लेकिन पृथक रूप में अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ था । बहुत समय से मेरी यह अभिलाषा थी कि सहृदय, भावुक भक्त एवं ब्रजप्रेमी इस ग्रन्थ का प्रकाशन मेरे लिये सुखद अनुभूति है ।

अनेक विद्वानों, गुरुजनों, स्नेही बान्धवों एवं शुभचिनतकों की निरन्तर प्रेरणा एवं आग्रह के फलस्वरूप यह ग्रन्थ प्रस्तुत हो सका है, अतः मैं उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ । डा० कृष्णदत्त बाजपेयी जी ने भूमिका लिखकर मुझे अनुग्रहीत किया, उनके प्रति तथा पग-पग पर सहयोग देने वाले वृन्दावन शोध संस्थान-परिवार के प्रति आभारी हूँ । शिवमस्तु

दुर्गा अष्टमी
चैत्र शुक्ला, ८
सं० २०५१

-- डा० (श्रीमती) उमा भास्कर

स्थल -परिचय

अर्कस्थल– बाराह पुराण एवं पद्म पुराण में जिनप्रभ सूरी के पाँच स्थल, अर्कस्थल, वीरस्थल, कुशस्थल, पुष्पस्थल एवं महीस्थल वर्णित हैं । इन जैन तीर्थों की स्थिति ब्रज-मण्डल यात्रा में विद्यमान भाण्डीर वन में कही गई है ।

अरिष्टकुण्ड-राधाकुण्ड– यह स्थान गोवर्द्धन में स्थित है । छद्मवेष धारण किये हुए अरिष्टासुर के साथ श्रीकृष्ण का घोर युद्ध हुआ । एड़ी-प्रहार से पृथ्वी पर तीर्थ बन गया । उस असुर को मारने के पश्चात् वृष हत्या के शाप से मुक्त होने के लिए श्रीराधा के द्वारा निर्मित कुण्ड में श्रीकृष्ण ने स्नान किया । यहाँ दो कुण्ड हैं राधाकुण्ड और कृष्णकुण्ड । अहोई अष्टमी को रात्रि बारह बजे स्नान पुण्यप्रद एवं सर्व कामनापूरक कहा गया है । विशेष रूप से यह मान्यता है कि निस्सन्तान को स्नान करने से सन्तान की प्राप्ति होती है ।

अक्रूर तीर्थ – मथुरा से उत्तर में चार मील और वृन्दावन के दक्षिण में दो मील दूर है । यहाँ श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों को बैकुंठ के दर्शन करवाये । अक्रूर जी के साथ मथुरा जाते समय श्रीकृष्ण बलराम ने मध्याह्न काल में यहाँ विश्राम किया और अक्रूर जी को अपनी अलौकिकता का साक्षात्कार कराया । अपर नाम 'ब्रह्महृद' है । कहा जाता है कि कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को ब्रज-दर्शन हेतु आये हुए चैतन्य महाप्रभु ने यहीं पर निवास किया था । राजा बृहत्सेन ने शान्तनु ऋषि के आचार्यत्व में यहाँ पर यज्ञ किया था ।

अन्नकूट स्थान – श्रीकृष्ण के द्वारा इन्द्र पूजा का निषेध करने पर इन्द्र ने मूसलाधार वर्षा की, इस वर्षा से ब्रजवासियों को सुरक्षित करने के लिए श्रीकृष्ण ने गिरिराज धारण किया । यहाँ अन्न का ढेर रखा गया था, तभी से यह स्थान अन्नकूट नाम से प्रसिद्ध हुआ । यहीं गोवर्द्धन शिला पर दही, कटोरा और कमल का चिह्न अंकित है । इस ग्राम के दक्षिण में गिरिराज के निकट श्रीनाथ जी का प्राकट्य स्थल है । यह ग्राम आन्यौर नाम से विख्यात है ।

असिकुण्ड तीर्थ – यह वाराह-क्षेत्र कहलाता है । प्राचीनकाल में यहाँ वाराही, नारायणी, वामना और लांगली चार शक्तियाँ प्रतिष्ठित थीं । आजकल यहाँ वाराह, नृसिंह, गणेश और हनुमान आदि देव मन्दिर हैं । द्वारिकाधीश मन्दिर के समीप स्थित यह असकुण्डा घाट के नाम से विख्यात है । द्विजों के प्रार्थना करने पर बाराह भगवान् ने अपनी असि (तलवार) रक्षा हेतु अर्पित की थी, अत: यह क्षेत्र इस नाम से विख्यात हुआ ।

कंसकाली – भूतेश्वर महादेव के समीप कङ्काली टीले पर कङ्काली देवी का मन्दिर है । कंस ने देवकी की जिस कन्या को मारना चाहा था, वह हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी थी, यह वही देवी है । पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई किये जाने पर अनेक प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं ।

काम्यकवन (कामाँ) -- यह स्थान कामवन भी कहलाता है । आजकल कामाँ ग्राम के रूप में प्रसिद्ध है । यह डीग से तेरह मील दूर तथा मथुरा से सेंतीस मील दूर राजस्थान के भरतपुर जिले में स्थित है । महाभारत में उल्लिखित है कि वनवास काल में पाण्डवों ने यहाँ निवास किया था । पाण्डव मन्दिर में पाँचों पांडवों और द्रौपदी की मूर्तियाँ आज भी विद्यमान हैं । युधिष्ठिर के नाम पर 'धर्मकुण्ड' भी है ।

यहाँ कृष्ण की बाल क्रीड़ा के अनेक चिह्न हैं - खिसलिनी शिला, भोजन थाली आदि विशिष्ट स्थान हैं । कृष्णकाल में गोवर्धन से कामवन तक का क्षेत्र वृन्दावन कहलाता था, जहाँ कृष्ण ग्वालों के साथ गोचारण करते थे । वृन्दादेवी का मन्दिर भी यहाँ है । कामवन से छ: मील दूर घाटा से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि ९०५ ई० में गुर्जर प्रतिहार वंश के राजा भोजदेव ने कामेश्वर महादेव के मन्दिर के लिए भूमि दान में दी थी । चौरासी खंभा से प्राप्त शिलालेख पर उत्कीर्ण अभिलेख नौवीं शताब्दी ई० का है जिसमें गुर्जर प्रतिहार वंश के राजाओं का उल्लेख है । इसी वंश की रानी बच्छालिका ने यहाँ विशाल विष्णु-मन्दिर बनवाया था । बाद में आक्रमणकारी मुसलमानों ने इसे मस्जिद का रूप दे दिया । इसके खम्भों के रूपवास और फतेहपुर सीकरी का पत्थर लगा हुआ है । गणेश काली विष्णु आदि देवों की मूर्तियाँ इन खम्भों पर अङ्कित थीं, जिन्हें मुस्लिमों ने नष्ट कर दिया । १८८२ ई० में सर एलेक्जेंडर नामक पर्यटक ने इस मन्दिर के २०० स्तम्भों को देखा था । तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने आक्रमण करके मंदिर को ध्वस्त किया था यह सूचना प्रवेशद्वार पर अङ्कित फारसी अभिलेख से प्राप्त होती है । इसके बाद धर्मांध फिरोज तुगलक ने १३५३ ई० में कामवन पर आक्रमण करके कत्लेआम किया और मंदिर तोड़ा । प्रवेश द्वार पर अपना नाम खुदवाकर विष्णु प्रतिमा के स्थान पर सात फुट ऊँचा, चार फुट चौड़ा मेहराबदार दरवाजा बनवाकर उसके मेहराब पर कुरान की आयतें खुदवाईं । इसके पास ही नमाज का चबूतरा बनवाया, जो आज भी है । चौरासी खम्भों के चौक की लं० ५२ फुट आठ इंच और चौड़ाई ४६ फुट ६ इंच है । स्थापत्य की दृष्टि से यह वन उत्कृष्ट है । चौरासी खम्भे, चौरासी कुण्ड, चौरासी मंदिर, सात द्वार और विभिन्न ध्वंसावशेष इसके महत्व को सूचित करते हैं । यहाँ के दृष्टव्य स्थल, कामेश्वर मंदिर, चौरासी खम्भा, व्योमासुर गुफा, पंच पाण्डव, गोकुल चन्द्रमा मंदिर, मदन मोहन मंदिर,

विमल कुण्ड, धर्मकुण्ड आदि हैं । इस वन की परिक्रमा का परिमाण सात कोस है ।

कुमुदवन – यह कुन्दवन का पर्याय है । इसको विहारकुण्ड या कृष्णकुंड भी कहा जाता है । एक कच्चा तालाब यहाँ विद्यमान है । सम्भवतः कुमुद पुष्पों के बाहुल्य के कारण इस नाम से विख्यात हुआ । बल्लभाचार्य जी की बैठक यहाँ भी है । निकट ही कपिल मुनि का स्थान है । वाराह पुराण में वर्णन है कि भाद्रपद कृष्णा एकादशी को यहाँ परिक्रमा का महत्पुण्य है जो आधा कोस परिमाणयुक्त है ।

केशीतीर्थ – यह वृन्दावन में केशीघाट के नाम से प्रसिद्ध है । श्रीकृष्ण ने यहाँ केशी नामक दैत्य का वध किया । लाल पत्थर से निर्मित यह प्राचीन घाट है । यहाँ हनुमान तथा यमुना मन्दिर विद्यमान हैं । यमुना जी के चित्र-पट की नित्य आरती होती है । कई जगह घाट के पत्थर टूट गये हैं ।

केशवदेव – मथुरा का सर्वप्राचीन मन्दिर है । जिसमें कृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभ ने केशवदेव भगवान् की मूर्ति की स्थापना की थी । यादवकाल में यहाँ कंस का कारागार था, जिसकी एक कोठरी में कृष्ण ने जन्म लिया । कई बार यहाँ कृष्ण मन्दिर बनवाये गये । आक्रमणकारियों ने कई बार नष्ट किये । प्रथम मंदिर शक क्षत्रप शोडास के शासन काल में विद्यमान था । वसु नामक व्यक्ति ने इस मंदिर का तोरण और वेदिका बनवाई । दूसरी बार चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने पाँचवीं शताब्दी में बनवाया, जिसको महमूद गजनवी ने ११वीं शताब्दी में नष्ट कर दिया । सं० १२०७ में कन्नौज के राजा विजयपाल ने तीसरी बार मंदिर निर्माण कराया जिसे सिकन्दर लोधी ने सं० १५७३ में नष्ट किया । अंतिम बार ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने सं० १६७० में यह मंदिर बनवाया । पुनः सं० १७२६ में औरंगजेब ने इसे तुड़वा दिया । इसके एक भाग में मस्जिद बनवाई । जीर्ण-शीर्ण मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ । आज यह मन्दिर बहुत अच्छी स्थिति में है ।

कृष्णगंगा – यह सोम और बैकुंठ तीर्थों के मध्य में स्थित है । यहाँ महर्षि व्यास ने तप किया था । कुछ विद्वानों के अनुसार पुराणों की रचना यहीं हुई । यहाँ पर स्थित शिव मंदिर में पत्थर का काम अति उत्कृष्ट है । इसका निर्माण मन्दिर के प्रभारी ब्राह्मण बल्देव व्यास की देखरेख में हुआ । कृष्णगंगा घाट पर पत्थर से निर्मित प्राचीन छतरी विद्यमान है ।

खदिरवन – वर्तमान में वन के स्थान पर 'खायरा' ग्राम बसा हुआ है । कृष्ण और गोपियों का मिलन होने के कारण यहाँ स्थित कुण्ड का नाम कृष्ण कुण्ड या संगम कुण्ड है । यह स्थान छाता से डेढ़ कोस दक्षिण में है । वृन्दावन से नौ कोस दूर यह लोक-विश्रुत तीर्थ है । वाराह पुराण के अनुसार

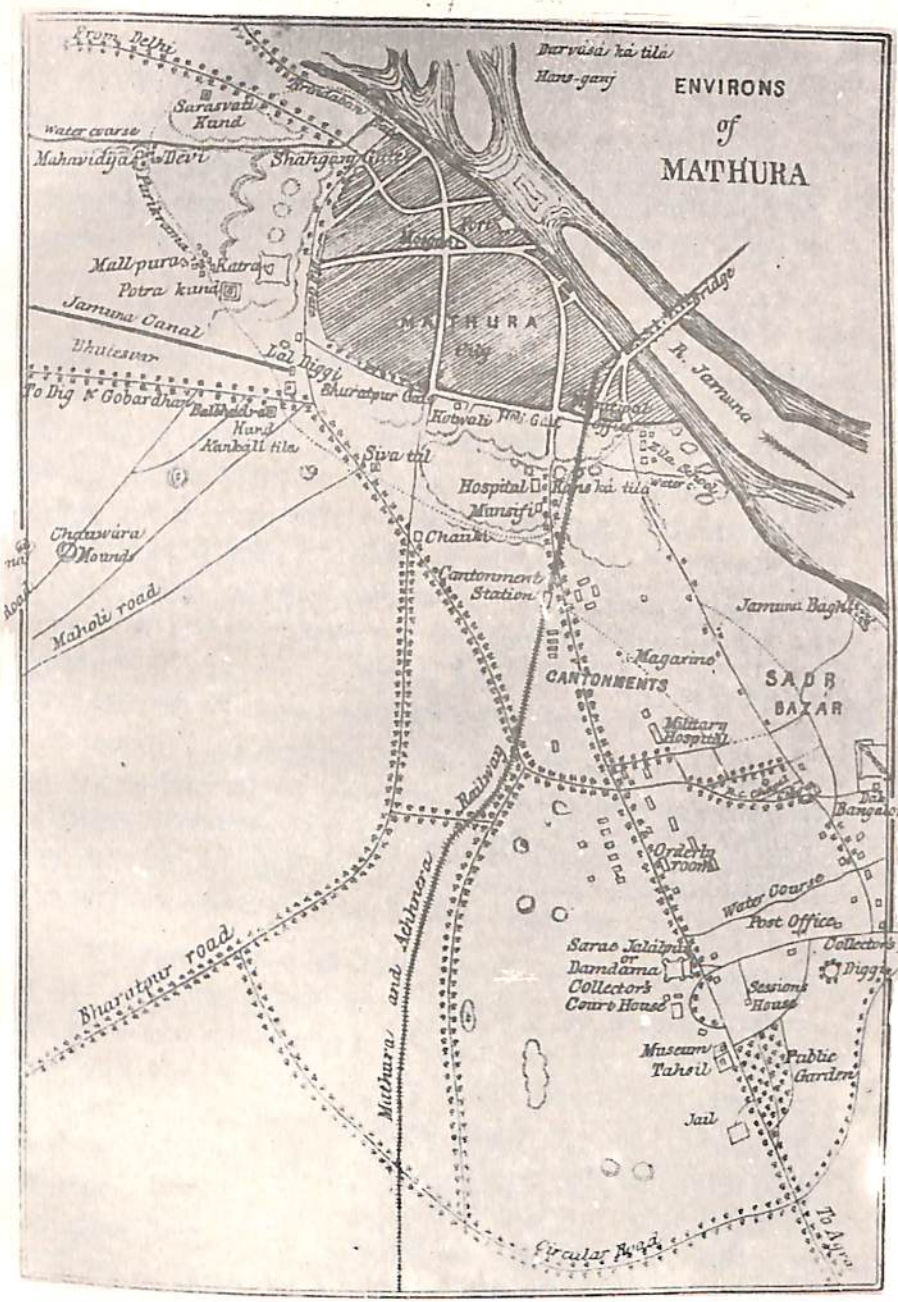

मथुरा का मानचित्र

इस वन की यात्रा करने से मनुष्य वाराह लोक प्राप्त करता है तथा नरक से मुक्त हो जाता है ।

गतश्रम मन्दिर – विश्राम बाजार में गतश्रम नामक टीले पर यह मन्दिर विद्यमान है । टीले के सामने विश्रान्ति (विश्राम) घाट है । मन्दिर रामानुज सम्प्रदाय से सम्बद्ध है । इसका निर्माण श्रीप्राणनाथ शास्त्री ने सं० १८५७ में कराया ।

गरुड़ केशव – आज यह मंदिर छटीकरा स्थित गरुड़ गोविन्द मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है । पक्षिराज गरुड़ कृष्ण रूप का दर्शन करने मथुरा आये, वहाँ के सभी निवासी उनको कृष्ण रूप दिखाई दिये । श्रीकृष्ण ने कहा – पापी व्यक्ति ही मथुरावासियों को मुझसे भिन्न देखते हैं, जबकि सभी मेरे ही रूप हैं । यह कहकर विष्णु रूप ग्रहण कर श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये । गरुड़जी भी बैकुंठ चले गये । इस मंदिर में गरुड़ पर आरूढ़ द्वादश भुजी कृष्णमूर्ति है जो काले पत्थर से निर्मित है । उनके दायें और बांये रुक्मिणी और सत्यभामा हैं । माघ मास में यहाँ विशेष दर्शन होते हैं । अक्षय तृतीया को सभी अंगों में चन्दन का लेपन किया जाता है । कृष्ण-प्रपौत्र वज्रनाभ ने इस मूर्ति की स्थापना की थी । इस मंदिर के संबंध में कहावत प्रसिद्ध है – आठ हाथ कौ मंदिर, बारह हाथ कौ ठाकुर । यहाँ गोविन्दकुण्ड विद्यमान है ।

गणेश्वर – यह गोकर्णेश्वर के समीप गणेश टीले के नाम से ज्ञात है । इसी टीले का निकटवर्ती घाट गणेश घाट कहलाता है । विद्वान् फोगेल ने यहाँ एक खण्डित अभिलेख प्राप्त किया था । इस अभिलेख से क्षहरात वंश के घटाक नामक क्षत्रप का नाम ज्ञात होता है । (जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी १६१२ पृ० १२१) आजकल यह स्थान गनेसरा कहलाता है ।

गोकर्णेश्वर – मथुरा की सीमा 'धूरकोट' के अन्तिम छोर पर स्थित यह शिव उत्तरी सीमा के रक्षक चार क्षेत्रपालों में से एक हैं । इसे गोकर्णेश्वर टीला या 'कैलास' कहा जाता है। इसी नाम से शिव मंदिर भी विद्यमान है । विजय कुमार माथुर के अनुसार मथुरा से दो मील उत्तर में यमुना किनारे एक प्राचीन स्थान है, जहाँ कुषाणकाल में एक देवकुल था । यहाँ से कई कुषाण सम्राटों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका अभिज्ञान अभी तक संदिग्ध है । (एतिहासिक स्थानावली पृ० २६६) पुरातत्व विदों के अनुसार वर्तमान मूर्ति कुषाण राजा हुविष्क की है, जिस पर लम्बे-लम्बे बाल, दाढ़ी-मूँछें भी हैं । उसके एक हाथ में खप्पर, दूसरे में पुष्प है । यहीं पर गार्गी और शार्गी ऋषि-पत्नियों की प्रतिमाएं भी हैं ।

चर्चिका देवी – यह देवी मंदिर योगमाया घाट पर स्थित है । कंस ने कृष्ण-भगिनी योगमाया का वध करने का प्रयत्न किया था, यह स्थान उसी

की स्मृति में निर्मित है । इन्हीं को श्मशामवासिनी देवी कहा है, सती बुर्ज इसी के निकट विद्यमान है ।

तालवन – व्रज प्रदेश में स्थित द्वादश वनों में से एक है । विष्णु पुराण के अनुसार कृष्ण ग्वालों के साथ क्रीड़ा हेतु इस वन में जाते थे – **भ्रममाणौ वने तस्मिन् रम्ये तालवनं गतौ** - (विष्णु पु० ५/८/ १) ताड़ वृक्षों का विशाल जंगल होने के कारण यह नाम पड़ा । धेनुकासुर का यहाँ निवास था । गर्दभ के रूप में वह यहाँ विचरण किया करता था, बलराम ने इसका वध किया । कालान्तर में यह वन उजड़ गया, वहीं अब तारसी ग्राम बस गया है । ग्राउज के अनुसार इस गांव को सतोहा के कछवाही राजपूत तारासिंह ने बसाया था । यहाँ बलराम मंदिर एवं बलभद्र कुण्ड विद्यमान है, इसकी परिक्रमा का परिमाण पौन कोस है । यह मथुरा से दक्षिण और मधुवन से नैऋत्य कोण में लगभग ३ मील की दूरी पर स्थित है । ब्रजभक्ति विलास में इस वन में स्थित बलभद्र कुण्ड को संकर्षण-कुण्ड कहा है । ब्रह्म वैवर्त पुराण (कृष्ण ज० खं० २२/१) के अनुसार गौचारण के समय कृष्ण ने भूखी सखामण्डली को स्वादिष्ट ताड़ के फल खिलाकर तृप्त किया था ।

तिन्दुकतीर्थ – मथुरा में यह अब बंगाली घाट के रूप में प्रसिद्ध है । बङ्गाल के वर्द्धमान नरेश ने इस घाट का जीर्णोद्धार कराया, जिसके कारण बंगाली घाट कहा जाता है । वाराह पुराण के आख्यान के अनुसार कृष्ण-बलराम ने तिन्दुक नामक नापित (नाई) का उद्धार किया था, इसीलिए तिन्दुक तीर्थ कहलाया ।

दशाश्वमेधतीर्थ – यह मथुरा में कल्लू जी की धर्मशाला के पीछे है । इसके तट पर नील कंठेश्वर महादेव का मंदिर है । भगवान् वामन भी यहीं विराजित हैं । कहा जाता है कि नागकाल में मथुरा के नाग राजाओं ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये, अत: यह घाट इस नाम से विख्यात हुआ ।

ध्रुवतीर्थ – इसे ध्रुव क्षेत्र या ध्रुव टीला कहा जाता है । ध्रुव की यह तपस्थली है । ध्रुव घाट के पास एक छोटे टीले पर ध्रुव जी की शुक्लमूर्ति है । प्राचीन मंदिर के स्थान पर सं० १८६४ में मंदिर बनाया गया । यहाँ से २ फुट २ इंच वर्गाकार बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई, जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है ।

नवकतीर्थ – शिवकुंड के उत्तर में यह पवित्र क्षेत्र है । इस समय यह सन्त घाट के नाम से ज्ञात है । यहाँ पहले कृष्ण का प्राचीन मंदिर था । अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में इसे नष्ट कर दिया । इस समय इस घाट पर शिव मंदिर है ।

पद्मनाभमंदिर – मथुरा में होलीगेट के पास वज्रनाभ द्वारा स्थापित कंसनिकन्दन भगवान् का मंदिर है । वज्रनाभ ने ही महोली की पौर में पद्मनाभ

का मंदिर स्थापित किया । इसके आगे दीर्घ विष्णु मंदिर है जिसे राजा पटनीमल ने बनवाया था ।

प्रयागतीर्थ – प्रयाग घाट पर वेणी माधव का मंदिर है । यहीं पर गलता वाली कुंज या रामानुज कूट विद्यमान है । यहाँ स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है ।

प्रस्कन्दनतीर्थ – 'वृन्दावन प्रकाश माला' में इसे पशुक्रन्दन तीर्थ कहा है । पौराणिक काल में समस्त गोधन घास खाने के बाद एकत्र होकर विश्राम करता था तथा समीपस्थ घाट पर जाकर पानी पीता था । जब श्रीकृष्ण कालिय नाग को दण्ड देने हेतु यमुना में कूद पड़े तब समस्त गोधन दु:ख के कारण क्रन्दन करने लगा, रँभाने लगा । उनके इस करुण रुदन के कारण इस घाट को 'पशुक्रन्दन घाट' कहा गया । यह वृन्दावन में कालीदह के पास स्थित है ।

बहुलावन – बहुला नामक गाय के नाम पर इसका नाम प्रसिद्ध हुआ । पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार धर्म ने सिंह का रूप धारण करके बहुला गाय के सत्य की परीक्षा की । परीक्षा में सफल होने पर धर्म ने वरदान दिया । इसी घटना के कारण यहाँ गाय की मूर्ति स्थापित की गयी । यहीं पर कृष्ण कुण्ड विद्यमान है ।

आजकल इस वन में बाटी ग्राम बसा हुआ है । यह मथुरा से साढ़े तीन कोस दूर है । ग्राम के पूर्व में बलराम कुण्ड, दक्षिण में मानसरोवर और मध्य में लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है । गर्गसंहिता के अनुसार श्रीकृष्ण ने वंशी में मेघ-मल्हार राग बजाकर वर्षा कराई थी – "**रागं तु मेघ मल्हारं जगौ वंशीधर: स्वयम् । सद्यस्तत्रैव ववृषुर्मेघा अंबुकणांस्तथा ।**" (गर्ग० वृ० १६/२५/१७)

बिल्ववन – आजकल इसे बेलवन कहा जाता है । यह मांट से दो मील दूर ग्राम के रूप में विद्यमान है । बिल्व वृक्षों का आधिक्य होने के कारण इसे बेलवन कहा गया । श्रीकृष्ण गेंद के रूप में इनका प्रयोग करते थे । कूप के समीप लक्ष्मी जी का प्राचीन मंदिर है । कहा जाता है वृन्दावन में लक्ष्मी जी का प्रवेश नहीं था, इसीलिए यहाँ उन्होंने गोपी सौभाग्य पाने हेतु तपस्या की । वृन्दावन और बिल्ववन के मध्य यमुना प्रवाहित है । इसी वन में जहाँगीरपुर नामक ग्राम बसा हुआ है । भागवत के दशम स्कन्ध में इसका वर्णन है । पौष मास के प्रत्येक बृहस्पतिवार को यहाँ मेला लगता है ।

भद्रवन – वन के रूप में इसका अस्तित्व नहीं है । इस वन के अधीश्वर हयग्रीव माने जाते थे । बस्ती के रूप में विद्यमान है । 'भदनवारौ' इसका नामान्तर है । नन्दघाट के अग्निकोण में २ मील दूर यमुना के दूसरे तट पर स्थित है । यहाँ वट वृक्ष के नीचे झाड़खण्डेश्वर महादेव और हनुमान मंदिर है । श्रीकृष्ण यहाँ गौचारण हेतु आया करते थे ।

भाण्डीरवन – ''भाण्डीरे यमुनातीरे बाललीलाञ्चकार ह ।'' भद्रवन से दो मील दूर स्थित इस वन में कृष्ण ने बाल लीलाएँ की थीं । राधा ने सुबल सखा का वेष धारण कर कृष्ण के साथ मल्ल युद्ध किया था । यहाँ भाण्डीर कुण्ड, राम मंदिर और वेणु कूप है । इस वन के अधीश्वर श्रीधर हैं । वृन्दावन से चार कोस की दूरी पर स्थित इस वन में श्रीकृष्ण ने वंशी की ध्वनि से पाताल से जल निकाल कर सखाओं की प्यास बुझाई थी । इसका संबंध 'भंडीर' नामक यक्ष से है । पौराणिक कथानुसार कृष्ण-बलराम ने यहाँ प्रलम्बासुर का बध किया । एक किंवदन्ती के अनुसार यहाँ बलराम जी ने अपना मुकुट उतार कर श्रम दूर किया था । अत: वज्रनाभ द्वारा पधराया हुआ मुकुट दर्शनीय है । श्याम तमाल वृक्ष के नीचे महाप्रभु जी की गुप्त बैठक बताई जाती है ।

भूतेश्वर – यहाँ मथुरा में पश्चिम दिशा में स्थित क्षेत्रपाल शिव हैं । मथुरा के ऐतिहासिक व धार्मिक 'पंचस्थल' में से यह 'वीरस्थल' कहा जाता था । नागों के शासनकाल में यहाँ कई शिव मंदिर एवं मठ थे । इनको विदेशियों ने नष्ट कर दिया । वर्तमान मंदिर मराठों के शासनकाल में बना ।

मधुवन – यह वर्तमान मथुरा से लगभग ५ मील दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है । इसके समीप ही महोली ग्राम है । कहा जाता है, यहाँ मधु-कैटभ का विनाश कर विष्णु भगवान् मधुसूदन कहलाये। यहीं ध्रुव ने तप किया था । प्राचीनकाल में शत्रुघ्न ने इस वन के एक भाग में मथुरा की स्थापना की थी, जिसका नाम 'मधुरा' रखा गया । अब यमुना का प्रवाह यहाँ से बहुत दूर है । प्राचीन संस्कृत साहित्य में मधुवन को श्रीकृष्ण की चंचल बाल लीलास्थली बताया गया है । पारम्परिक अनुश्रुति के अनुसार मधुदैत्य की मथुरा और उसका मधुवन इसी स्थान पर थे । लवणासुर की गुफा यहाँ विद्यमान है, जिसे मधु-पुत्र लवणासुर ने अपना निवास स्थान बनाया ।

इस वन में 'मधु कुण्ड' है, जिसे कृष्ण कुण्ड भी कहा जाता है । इसके समीपस्थ मंदिर में मधुबनिया ठाकुर चतुर्भुज कृष्ण तथा दाऊजी के विग्रह हैं । भाद्रपद कृष्णा एकादशी को इस वन की परिक्रमा की जाती है, जो डेढ़ कोस की है ।

महावन – दाऊजी और गोकुल के मार्ग में स्थित है, जिसे प्राचीन गोकुल कहा जाता है । इस वन का विस्तार दुर्वासा आश्रम तक था । पुराणों में यह वन बृहद्वन, महावन, नन्दकानन, गोकुल, गोव्रज नामों से उल्लिखित है । वृन्दावन से छ: कोस तथा मथुरा से तीन कोस दूर स्थित है । नन्दराय का निवास स्थान यहीं पर है । वसुदेव अपने नवजात पुत्र को कंस से बचाने के लिए यहीं छोड़कर गये थे । वनवास काल में पाण्डवों ने कुछ समय यहाँ निवास किया था । चौरासी खम्भों से युक्त नन्द भवन यहाँ आज भी विद्यमान है, जिसमें नन्द-यशोदा तथा कृष्ण की प्रतिमाएं हैं । दाऊजी का जन्म स्थान

भी यहीं है, इसलिए इस ग्राम का नाम बल्देव या दाऊजी भी है । दन्तधावन टीला, गोपियों की हवेली, पूतना, शकटासुर तथा तृणावर्त के वध स्थान, छठी पूजन स्थल, ब्रजराज गौशाला आदि कृष्णकालीन स्थान आज भी विद्यमान हैं ।

औरंगजेब के समय महावन को उसकी धर्मांध नीति का शिकार बनना पड़ा । १७५७ ई० में अफगान अहमद शाह अब्दाली ने जब मथुरा पर आक्रमण किया था, तो महावन में सेना का शिविर बनाया । उसने महावन को नष्ट करना चाहा तो चार हजार नागा सन्यासियों ने उसकी सेना के दो हजार सिपाहियों को मार डाला । स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए । गोकुल पर होने वाले आक्रमण का इस प्रकार निराकरण हुआ और अब्दाली ने अपनी सेना वापिस बुला ली । इसके बाद सैन्य शिविर में विसूचिका (हैजा) के प्रकोप से अनेक सिपाहियों की मृत्यु हो गयी । जाते-जाते भी इस दुष्ट आक्रांता ने मथुरा-वृन्दावन आदि स्थानों पर लूटपाट की तथा विध्वंस और रक्तपात किंया ।

महाविद्या – मथुरा से पश्चिम में दो मील दूर ऊँचे टीले पर बना हुआ देवी मंदिर है । प्राचीन समय में यह क्षेत्र 'अम्बिकावन' नाम से प्रसिद्ध था । यहाँ हिंसक जन्तु निवास करते थे । बौद्धकाल में महाविद्या बौद्ध देवी थी । जैन धर्म में सिंहवाहिनी अम्बिका देवी की मान्यता है । अत: यह क्षेत्र बौद्ध जैन धर्मों से प्रभावित रहा । शैव शाक्तों की प्रबलता होने पर शक्ति पीठ बन गया । सत्रहवीं सदी में सम्राट् दीक्षित तांत्रिक का यहाँ निवास था । मराठों ने वर्तमान मंदिर का निर्माण किया । सं० १९०७ में देवी की वर्तमान प्रतिमा स्थापित की गयी । इन्हें विन्ध्येश्वरी देवी भी कहा गया है । कंस को मारने की अभिलाषा से कृष्ण, बलराम और ग्वालों ने देवी के संकेत से यहाँ मंत्रणा की थी, तब से सिद्धिदा, मोक्षदा सिद्धेश्वरी कहा जाता है ।

मानसतीर्थ – यह घाट मथुरा के पश्चिम में स्थित है । ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि होने के कारण ऋषिगण इसकी आराधना करते हैं ।

यमुनार्जुनक – इसका वास्तविक नाम यमलार्जुनक होना चाहिए । यमल का अर्थ है जुड़वाँ । दो अर्जुन वृक्ष यमलार्जुन कहलाते हैं । पौराणिक कृष्ण लीलाओं के अनुसार जब कृष्ण बालक थे, उस समय माँ यशोदा ने ऊखल से बाँध दिया था । ऊखल खींचते हुए वह अर्जुन वृक्षों के मध्य जैसे ही पहुँचे, दोनों वृक्ष गिर पड़े और उनसे दो दिव्य पुरुष स्तुति करते हुए प्रकट हुए । ये दोनों नारद के शाप के कारण जड़ वृक्ष हो गये थे । यह स्थान महावन में ब्रह्माण्ड घाट के मार्ग में स्थित है ।

विघ्नराजतीर्थ – गणपति गजानन का यह तीर्थ मानस घाट के समीप स्थित है । यहाँ स्नान करने से विघ्नों से मुक्ति प्राप्त होती है ।

विश्रान्तितीर्थ – यह मथुरा का प्रधान तीर्थ और पवित्र यमुना का प्रमुख घाट है । अनुश्रुति है कि कृष्ण ने कंस वध करने के बाद यहाँ विश्राम किया था । मुस्लिम सुल्तानों के शासनकाल में इसका महत्व नहीं था । इसका प्रयोग श्मशान घाट के रूप में होता था । सिकन्दर लोधी के शासन में यहाँ यमुना स्नान पर नियंत्रण था । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार श्री बल्लभाचार्य जी ने शुद्धि कर भागवत पारायण किया । श्मशान को यहाँ से स्थानान्तरित करवाया ।

मुगल सम्राट् अकबर धर्मप्राण था । उसने हिन्दुओं को धार्मिक कृत्य सम्पादन की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की । प्रात: सायं यहाँ नित्य यमुना जी की आरती होती है । चैत्र शुक्लाषष्ठी को यमुना-जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है । घाट पर अनेक मंदिर हैं ।

वृन्दावन – यह मथुरा से छ: मील उत्तर में बसा हुआ है । वृन्दा अर्थात् तुलसी के वृक्षों का आधिक्य होने के कारण यह वृन्दावन कहलाया । यह श्रीकृष्ण का प्रिय क्रीड़ा एवं रास स्थल है । संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के भक्ति काव्यों में इसकी महिमा का गान किया है । कालिदास ने इसकी समानता कुबेर के 'चैत्ररथ उद्यान' से की है । पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में उल्लेख है कि कृष्णकालीन वृन्दावन में गोवर्धन पर्वत था तथा निकट ही यमुना प्रवाहित थी । जब कंस ने कृष्ण बलराम को मथुरा लाने हेतु अक्रूर को भेजा था, तब मथुरा से प्रात: चलकर सायंकाल वृन्दावन पहुँचे थे । इस वर्णन से मथुरा-वृन्दावन के मध्य की दूरी का सहज अनुमान हो जाता है । इसकी परिधि उस समय २० कोस थी । वर्तमान वृन्दावन में यमुनाप्रवाह है, किन्तु गोवर्धन नहीं ।

आरम्भ में इसमें हिंसक जन्तुओं के कारण किसी का प्रवेश संभव नहीं था । सर्वप्रथम गौराङ्ग महाप्रभु ने प्रवेश किया तथा अपने कीर्तन के द्वारा सभी हिंसक जन्तुओं को अपना वशवर्ती बनाया । तत्पश्चात् उनके शिष्यों ने गोपीनाथ, गोविन्ददेव, मदनमोहन देवालयों की स्थापना की । ये तीनों मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं । हिन्दी और संस्कृत के अनेक भक्ति ग्रन्थ वृन्दावन की पवित्र भूमि में ही लिखे गये । यह सभी भक्ति सम्प्रदायों का केन्द्र-स्थल हैं । यहाँ के प्रत्येक घर में तुलसी और ठाकुर पूजा है । घर-घर मंदिर हैं, अत: मंदिरों की वास्तविक गणना नहीं की जा सकती ।

कालीदह, वंशीवट, केशीघाट, दावानल कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, धीरसमीर, सेवाकुंज आदि स्थान श्रीकृष्ण के प्राचीन प्रमुख लीला स्थान हैं ।

गोविन्ददेव मंदिर अकबर के शासनकाल में स्थापित हुआ । लालपत्थर से निर्मित इस मंदिर का स्थाप्य अनुपम है । आक्रमण के समय यहाँ के देव-विग्रह जयपुर भेज दिये गये थे, वह आज भी जयपुर स्थित गोविन्ददेव मंदिर में विराजित हैं ।

मदनमोहन मंदिर सोलहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ । यहाँ की मूर्तियाँ करौली में पूजित हैं । प्राचीन मंदिरों के अतिरिक्त अनेक नये मंदिर, आश्रम आदि निर्मित हुए हैं ।

लोहजङ्घवन – श्रीकृष्ण ने यहाँ लोहजंघासुर का विनाश किया था । आजकल यह लोहवन ग्राम के नाम से विख्यात है । इस वन के अधिष्ठाता हृषीकेश हैं। यहाँ कृष्णकुण्ड, लोहासुर गुफा और गोपीनाथ मंदिर विद्यमान है । यह मथुरा के सामने यमुना के उस पार स्थित है । इसके संबंध में ग्राउज ने लिखा है इस नाम का कोई असुर नहीं था, बल्कि मथुरा का एक ब्राह्मण था जो लङ्का गया । उक्त कथा सोमदेव कृत 'बृहत्कथा' में उपलब्ध है ।

शिवकुण्ड – यह अति प्राचीन कुण्ड है । इसके चारों ओर पक्के घाट सीढ़ियाँ, चौड़े चबूतरे, बुर्जियाँ एवं छतरियाँ हैं । इसका जीर्णोद्धार राजा पटनीमल ने सं० १८६४ में कराया था । यहाँ मल्लिकादेवी का मंदिर है ।

सप्तसामुद्रिककूप – यह अति प्राचीन ऐतिहासिक कुआँ है । नाग शासन काल में यहाँ सर्पों की पूजा होती थी । स्त्रियाँ आज भी नाग-पँचमी को नाग-पूजा करती हैं । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार विदेशों के साथ व्यापार करके लौटने पर धनी व्यापारी सवा पाव से सवा मन के सुवर्ण निर्मित सप्त समुद्र रूपी सात कुण्डों का दान करते थे । उन जलाशयों को 'सप्त समुद्र' या 'सप्त कूप' कहा जाता था । ऐसे ही कूप प्रयाग और काशी में भी बने हुए हैं । हूणों के द्वारा किये गये आक्रमणों के समय प्राचीन मूर्तियों को लोगों ने कुण्ड, सरोवर और कुओं में डाल दिया था ।

प्राचीन जनश्रुति है कि इस कूप में समुद्रों का जल रहता था । कुछ वर्ष पूर्व माथुर चतुर्वेदियों के परिवार में नवविवाहितदम्पति पूजा हेतु यहाँ आया करते थे ।

सरस्वतीसंगमस्थल – प्राचीनकाल में यहाँ यमुना और सरस्वती का सङ्गम होता था । महाविद्या के मैदान में बहती हुई सरस्वती यमुना में मिलकर सङ्गम-स्थल बनाती थी । आज वह स्थिति नहीं है । सरस्वती नदी लुप्त हो चुकी है । सरस्वतीकुण्ड विद्यमान है, जो सूख गया है । कुण्ड के पास ही सरस्वती की प्रतिमा स्थापित है ।

संयमनतीर्थ – कहा जाता है कि पुराणकाल में यहाँ स्वायंभुव मनु का स्थान था । आख्यान के अनुसार दुष्ट स्वभाव वाला एक निषाद नैमिषारण्य में रहता था । मथुरा जाकर कृष्ण पक्षीया चतुर्दशी को कालिन्दी तट पर यमुना स्नान करने से उसका मन संयमित (पवित्र) हो गया । अत: इस तीर्थ को 'संयमनतीर्थ' नाम दिया गया । आजकल यह स्वामीघाट के नाम से जाना जाता है ।

सूर्यतीर्थ – यह तिन्दुक घाट के समीप सूर्यघाट है । विरोचन के पुत्र राजा बलि ने यहाँ सूर्य की आराधना की थी । प्रसन्न होकर सूर्य देव ने उसे चिन्तामणि प्रदान की । यहाँ स्नान करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। सूर्यमंदिर यहाँ विद्यमान है । कृष्ण के पुत्र साम्ब ने यहाँ तपस्या की थी ।

सोमतीर्थ - यह कृष्ण गंगा के निकट स्थित व्यासाश्रम का ही अंगभूत तीर्थ है । 'कूर्मपुराण' के अनुसार यहाँ शंकर ध्रुव, वशिष्ठ, वेदव्यास, सावर्णि, याज्ञवल्क्य ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी । इसी तीर्थ पर कृष्ण ने साम्ब के लिए तपस्या की । आजकल यह गऊघाट के रूप में ज्ञात है । यहीं पर उपमन्यु ऋषि का आश्रम था । इस घाट पर सोमेश्वर महादेव विराजित हैं ।

धारालोपनक, घण्टाभरण तीर्थ – ये दोनों घाट मथुरा की परिक्रमा में विद्यमान हैं । कंस के किले से एक धारा यमुना में गिरती थी ।

हयमुक्ति तीर्थ – महास्थल के समीप मथुरा परिक्रमा मार्ग में स्थित है । कोई राजकुमार घोड़े पर सवार होकर मथुरा की परिक्रमा कर रहा था । उस तीर्थ के प्रभाव से घोड़े और नौकर की मार्ग में मृत्यु हो गयी । वे दोनों मुक्त हो गये, किन्तु राजकुमार सांसारिक बंधन में बँधा रहा । इस आख्यान से यह व्यक्त किया गया है कि परिक्रमा में वाहन का प्रयोग नहीं करना चाहिए । पदाति परिक्रमा का महत्व है ।

❀ ❀ ❀

मथुरा - माहात्म्य

प्रथमोऽध्यायः

श्रुत्वा देवस्य माहात्म्यं लोहार्गलनिवासिनः ।
त्रैलोक्यनाथाधिपतेर्विस्मयं परमं गता ॥ १ ॥

धरण्युवाच --

पद्मपत्रविशालाक्षलोकनाथ जगत्पते ।
त्वत्प्रसादाच्च देवेश श्रुतं शास्त्रं महोदयम् ॥ २ ॥
तव शिष्या च दासी च त्वामहं शरणं गता ।
जगद्धातर्जगद्योने जगत्प्रभुरतन्द्रितः ॥ ३ ॥
तव सम्भाषणादेव जातास्मि कनकोज्ज्वला ।
अलङ्कृता च शस्ता च तव शास्त्रेण मानद ॥ ४ ॥

अर्थात् – लोहार्गल में निवास करने वाले तीनों लोकों के ईश्वर तथा अधिपति देवता के माहात्म्य को सुनकर अत्यन्त विस्मित हूँ ॥ १ ॥ धरणी ने कहा – कमल पत्र के समान विशाल नेत्रों वाले तीनों लोकों के नाथ ! जगत् के स्वामी ! देवताओं के ईश्वर ! आपकी कृपा से सम्पूर्ण शास्त्र को मैंने सुना ॥ २ ॥ मैं आपकी शिष्या तथा अनुगता हूँ । हे जगत् के पालनकर्ता ! उत्पत्तिकर्ता और अधीश्वर ! मैं आपकी शरण में हूँ ॥ ३ ॥ आपके प्रवचन से ही मैं स्वर्ण के समान कान्तियुक्त हो गई हूँ । हे सम्माननीय ! आपके शास्त्र कथन ने मुझे अलङ्कृत और आश्वस्त कर दिया है ॥ ४ ॥

शास्त्रस्यास्य कृतेनाथ नास्ति हि परिश्रमः ।
त्वदायत्तं जगत्सर्वं यत्किञ्चित्प्रवर्त्तते ॥ ५ ॥
इति ज्ञात्वा च मे देव आह्लादो हृदि वर्तते ।
लोहार्गलात्परं श्रेष्ठं तीर्थं परमदुर्लभम् ॥ ६ ॥
तीर्थंतद्वद्कल्याणं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
यदस्ति दुर्ल्लभं तीर्थं कथयस्व मम प्रभो ॥ ७ ॥

श्री वाराह उवाच –

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे ।
समत्वं मथुरया हि प्रियं मम वसुन्धरे ॥ ८ ॥

सूत उवाच –

तत्श्रुत्वा वचनं तस्य प्रणम्य शिरसादृता ।
पुण्यानां परमं पुण्यं पृथ्वीवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

पृथिव्युवाच –

पुष्करं नैमिषं चैव पुरीं वाराणसीं तथा ।
एतान्हित्वा महाभाग मथुरां किं प्रशंससि ॥ १० ॥

अर्थात् – इस शास्त्र के कथन में आपको किसी प्रकार का परिश्रम नहीं होगा, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् में जो भी कुछ है, वह सब आपसे परिव्याप्त है ॥ ५ ॥ हे देव ! यह जानकर मेरे हृदय में आनन्दपूर्ण उल्लास है । लोहार्गल तीर्थ के अतिरिक्त अन्य श्रेष्ठ, तीर्थों में उत्तम यदि कोई कल्याणमय तीर्थ है, तो उसके सम्बन्ध में बताइये ॥ ६-७ ॥

श्री वाराह भगवान् बोले – हे वसुन्धरे ! मथुरा मुझे अत्यन्त प्रिय है । ऐसा तीर्थ न पाताल में है, न आकाश या मर्त्यलोक में । अर्थात् मथुरा की समता में कोई अन्य तीर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ सूत बोले – वाराह देव के वचन सुनकर आदरपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके पुण्यों से भी अत्यधिक पवित्र वाणी से पृथ्वी ने कहा – पुष्कर, नैमिषारण्य और वाराणसी नगरी को छोड़कर आप मथुरा की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? ॥ ९-१० ॥

श्री वाराह उवाच -

श्रृणु कात्स्र्येन वसुधे कथ्यमानं मयानघे ।
मथुरेति च विख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम ॥ ११ ॥
सा रम्या च प्रशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ।
श्रृणु देवि यथा स्तौमि मथुरां पापहारिणीम् ॥ १२ ॥
तत्र वासी नरो याति मोक्षं नास्त्यत्र संशयः ।
महामाघ्यां प्रयागे तु यत्फलं लभते नरः ॥
तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने-दिने ॥ १३ ॥

सन्निहित्यां चरेत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां जितेन्द्रियः ॥ १४ ॥
कार्तिक्यां चैव यत्पुण्यं पुष्करे च वसुन्धरे ।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने-दिने ॥ १५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु वाराणस्यां तु यत्फलं ।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां क्षणेन हि ॥ १६ ॥

अर्थात् – हे निष्पापावसुधे ! सावधान होकर मेरा कथन सुनो, 'मथुरा' इस नाम से प्रख्यात क्षेत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ ११ ॥ मथुरा अत्यन्त सुन्दर, विख्यात और मेरी जन्मभूमि है । पापहारिणी मथुरा का मैं जिस प्रकार स्तवन करता हूँ उसे सुनो ॥ १२ ॥ वहाँ निवास करने वाले मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं, इसमें कोई शङ्का नहीं है । प्रयाग में माघमासीया पूर्णिमा को स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है मथुरा में वह प्रतिदिन स्नान करने से मिलता है ॥ १३ ॥ हे देवि ! सूर्यग्रहण के समय सन्निहित (कुरुक्षेत्र) सर में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है । वही पुण्य इन्द्रियजयी नर को मथुरा में प्रतिदिन स्नान करने से प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ हे वसुन्धरे ! पुष्कर क्षेत्र में कार्तिकी पूर्णिमा को स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है वह मथुरा में प्रतिदिन स्नान से मिलता है ॥ १५ ॥ वाराणसी में एक सहस्र वर्ष पर्यन्त स्नान का फल मथुरा में क्षणिक स्नान के बराबर है ॥ १६ ॥

मथुरां च परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते रतिं ।
मूढो भ्रमति संसारे मोहितो मायया मम ॥ १७ ॥
यः श्रृणोति वरारोहे माथुरं मम मण्डलम् ।
अन्येनोच्चारितं शश्वत्सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।
मथुरायां गमिष्यन्ति सुते चैव जनार्दने ॥ १९ ॥
मथुरां समनुप्राप्य श्राद्धं कृत्वा यथाविधिः ।
तृप्तिं यान्तीह पितरो यावत्स्थित्यग्रजन्मनः ॥ २० ॥
वसंत्यपि महाभागे मथुरायां च ये जनाः ।
तेऽपि यांति परां सिद्धिं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ २१ ॥

अर्थात – जो मनुष्य मथुरा के अतिरिक्त अन्य स्थलों से प्रेम करता है, वह मूर्ख मेरी माया से मोहित होकर संसार में भ्रमण करता है ॥ १७ ॥ हे

सुन्दर कटिवाली 'वसुन्धरे' ! जो मेरे प्रिय मथुरामण्डल नाम का किसी अन्य व्यक्ति के मुख से भी निरन्तर श्रवण करता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है ॥ १८ ॥ पृथ्वी पर समुद्र पर्यन्त जितने भी तीर्थ हैं, विष्णु शयन के समय सभी मथुरा मण्डल में प्रयाण करते हैं ॥ १९ ॥ मथुरा में पहुँचकर विधि-पूर्वक श्राद्ध करने पर पितृगण तब तक तृप्त रहते हैं, जब तक ब्राह्मण यहाँ विद्यमान रहते हैं ॥ २० ॥ हे महाभागे ! जो मनुष्य मथुरा में केवल निवास ही करते हैं, वे भी मेरी कृपा से परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ २१ ॥

कुब्जाम्रके[1] शौकरके[2] मथुरायां विशेषतः ।
विना सांख्येन योगेन मुच्यते नात्र संशयः ॥ २२ ॥
मथुरायां महापुर्य्यां ये वसंति शुचिव्रताः ।
वलिभिक्षाप्रदातारो देवास्ते नरविग्रहाः ॥ २३ ॥
भविष्यामि वरारोहे द्वापरे युगसंस्थिते ।
ययातिनृपवंशेऽहं क्षत्रियः कुलवर्द्धनः ॥ २४ ॥
भविष्यामि वरारोहे मथुरायां न संशयः ।
मूर्तिश्चतुर्विधा कृत्वा स्थाप्यामीति तथाततः ॥ २५ ॥
स्थास्यामि वत्सरशतं युद्धेषु कृतनिश्चयः ।
एका चंदनसंकाशा द्वितीया कनकप्रभा ॥ २६ ॥

कुब्जाम्रक, सौकरक (सोरों) तथा मथुरा में सांख्य, योग साधन के बिना भी यहाँ के निवासी सिद्धि प्राप्त करते हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ २२ ॥ महान् नगरी मथुरा में जो मनुष्य पवित्रता से और नियमपूर्वक निवास करते हैं, बलि भिक्षादि प्रदान करते हैं, वे मनुज रूप में भी देव तुल्य हैं । हे सुन्दर कटिवाली वसुधे ! द्वापर युग के आगमन होने पर मैं मथुरा में राजा ययाति के वंश में अवतार ग्रहण करूँगा । उस समय चार प्रकार की मूर्तियाँ स्थापित करके सौ वर्षों तक निवास करूँगा । मेरे चार विग्रहों में से एक चन्दन के समान तथा द्वितीय सुवर्णमय होगा ॥ २३-२६ ॥

अर्कस्य सदृशी चान्या ह्यन्या चोत्पलसन्निभा ।
तत्र गुह्यानि नामानि भविष्यन्ति मम प्रिये ॥ २७ ॥

विशेष टिप्पणी – १. कुब्जाम्रक – यह ऋषिकेश का ही अपर नाम है ।
२. शौकरक – सूकर क्षेत्र (सोरों) ।

पुण्यानि च पवित्राणि संसारच्छेदनानि च ।
यत्राहं घातयिष्यामि द्वात्रिंशत्तु वसुन्धरे ॥ २८ ॥
दैत्यान्घोरान् महाभागे कंसादीन्घोरदर्शनान् ।
यमुना यत्र सुबहा नित्यं सन्निहिता ध्रुवम् ॥ २९ ॥
वैवस्वतस्वसा रम्या यमुना यत्र विश्रुता ।
तां नदीं यमुनां नाम्ना प्रयागे गाङ्गमाश्रिताम् ॥ ३० ॥

एक प्रतिमा सूर्य के समान तेजोमयी तथा अन्य कमल के सदृश है । हे प्रिये ! उन प्रतिमाओं के नाम मेरे ही गुप्त नाम होंगे ॥ २७ ॥ उस समय धर्म से द्वेष रखने वाले कंस आदि बत्तीस भयंकर दैत्य उत्पन्न होंगे, जिनका संहार मेरे द्वारा होगा ॥ २८ ॥ वहाँ (मथुरा) में यमराज की बहिन यमुना सुन्दर प्रवाह युक्त होने के कारण सुशोभित है । प्रयाग में यमुना नदी गंगा का आश्रय ग्रहण करती है ॥ २९-३० ॥

गङ्गाशतगुणायाश्च माथुरे मम मण्डले ।
यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥
तत्र गुह्यानि नामानि भविष्यन्ति ममानघे ।
येषु स्नातो नरो देवि ममलोके महीयते ॥ ३२ ॥
अविमुक्ते नरः स्नातो मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयः ।
अथात्रमुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गैच्छति ॥ ३३ ॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम कर्मपरायणः ।
न जायते स मर्त्येषु जायते स चतुर्भुजः ॥ ३४ ॥

मेरे मथुरा मण्डल में प्रवाहित होने के कारण यह गङ्गा की अपेक्षा शत गुण पुण्यमयी है ॥ ३१ ॥ हे अनघे ! (पाप शून्य) मथुरा में मेरे अन्य गुप्त तीर्थ होंगे । जिनमें स्नान करने से मनुष्य मेरे लोक को प्राप्त करेंगे ॥ ३२ ॥ अविमुक्त तीर्थ में स्नान करने से निस्संदेह मोक्ष प्राप्त होता है । प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ यहाँ प्राण त्याग करने पर कर्मनिष्ठ मनुष्यों का मर्त्यलोक में पुनः जन्म नहीं होता वह चतुर्भुज हो जाता है अर्थात सारुप्य मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

विश्रान्तिसंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यस्मिन्स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥ ३५ ॥
सर्वतीर्थेषु यः स्नातो सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फलं लभते देवि दृष्ट्वा देवं गतश्रमम् ॥ ३६ ॥

न च यज्ञैर्न तपसा न स्नानैर्न च संयमैः ।
तत्फलं लभते देवि स्नात्वा विश्रान्तिसंज्ञके ॥ ३७ ॥
कालत्रयं तु वसुधे यः पश्यति गतश्रमम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भीरू विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३८ ॥

तीनों लोकों (आकाश,मर्त्य, पाताल) में प्रसिद्ध विश्रान्ति नामक तीर्थ है । हे देवि ! इसमें स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ समस्त तीर्थों में स्नान करने से तथा सम्पूर्ण यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, उतना ही फल गतश्रम भगवान् (गतश्रम मंदिर, मथुरा) का दर्शन करने से मिलता है ॥ ३६ ॥ जो फल यज्ञ, तप संयम तथा तीर्थ स्नान से भी प्राप्त नहीं होता, वह विश्रान्ति तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ हे वसुधे ! जो नर तीनों कालों (प्रातः, सायं, रात्रि) में गतश्रम भगवान् के दर्शन तथा प्रदक्षिणा करता है, वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

अस्ति चान्यतरं गुह्यं सर्वसंसारमोक्षणम् ।
तस्मिन्स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥ ३९ ॥
प्रयागं नाम तीर्थं तु देवानामपि दुर्ल्लभम् ।
तस्मिन्स्नातो नरो देवि अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ४० ॥
इन्द्रलोकं समासाद्य नरोऽसौ दिवि मोदते ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ ४१ ॥
तथा कनखलं तीर्थं गुह्यं[1] तीर्थं परं मम ।
स्नानमात्रेण तत्रापि नाकपृष्ठे स मोदते ॥ ४२ ॥

समस्त संसार से मुक्त करने वाला अन्य गुप्त स्थल 'प्रयागतीर्थ' है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है । यहाँ स्नान कर मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ ३९-४० ॥ इन्द्रलोक को प्राप्त कर इस प्रकार के मनुष्य स्वर्ग का सुख प्राप्त करते हैं । यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार एक अन्य गुप्तस्थल 'कनखल-तीर्थ' है, यहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्य स्वर्गीय सुख का अधिकारी होता है ॥ ४२ ॥

अस्ति क्षेत्रं परं गुह्यं तिन्दुकं नामनामतः ।
तस्मिन्स्नातो नरो देवि काम्पिल्यं च महीयते ॥ ४३ ॥

१. परं प्रियतंर मम ।

तस्मिन्तीर्थे पुरावृत्तं तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
पाञ्चाल विषये देवि काम्पिल्यं च पुरोत्तमम् ॥ ४४ ॥
धनधान्य समायुक्तं ब्रह्मदत्तेन पालितम् ।
तस्मिंस्तु वसते देवि तिन्दुको नाम नापितः ॥ ४५ ॥
तस्मिंस्तु वसतस्तस्य नापितस्य पुरोत्तमे ।
कालेन महता तस्य कुटुम्बं क्षयमागतम् ॥ ४६ ॥

तिन्दुक नामक स्थान अत्यन्त गुप्त है । हे देवि ! इसमें स्नान करने से नर मेरे लोक में (विष्णु लोक) सम्मान प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥ हे वसुन्धरे ! तिन्दुक नामक तीर्थ का प्राचीन वृत्तान्त सुनो – पाञ्चाल राज्य में काम्पिल्य नामक उत्तमपुर (नगर) ॥ ४४ ॥ ब्रह्मदत्त के द्वारा शासित यह पुर धन-धान्यादि से सम्पन्न था । उसमें तिन्दुक नामक नापित (नाई) निवास करता था ॥ ४५ ॥ उसने वहाँ बहुत समय व्यतीत किया । काल प्रभाव से उसका समस्त परिवार नष्ट हो गया ॥ ४६ ॥

क्षीणे कुटुम्बे तु तदा सुभृशं दुःखपीडितः ।
सर्वसङ्ग परित्यागी सोऽगच्छन्मथुरां पुरीम् ॥ ४७ ॥
ब्राह्मणावसथे सोऽपि वसमानो वसुन्धरे ।
तस्य कर्मशतं कृत्वा स्नात्वैव च यमुनां नदीम् ॥ ४८ ॥
तत्र कर्म च कुरुते नित्यकालं दृढ़व्रतः ।
ततः कालेन महता पञ्चत्वं समुपागतः ॥ ४९ ॥
तत्तीर्थस्य प्रभावेण जातोऽसौ ब्राह्मणोत्तमः ।
तस्मिन्वरगृहे देवि ब्राह्मणो योगिनां वरः ॥ ५० ॥

परिवार के नष्ट हो जाने पर वह अत्यन्त पीड़ित हुआ । समस्त आसक्तियों को त्यागकर वह मथुरापुरी पहुँचा ॥ ४७ ॥ वहाँ किसी ब्राह्मण के आवास (घर) पर निवास किया । वहीं रहकर अनेक पुण्य कार्य तथा यमुना नदी में स्नान करके मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ४८-४९ ॥ उस तीर्थ के प्रभाव से वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ तथा श्रेष्ठ योगी के रूप में प्रसिद्ध हुआ ॥ ५० ॥

जातिस्मरो महाप्राज्ञो विष्णुभक्तो वसुन्धरे ।
तस्य तीर्थस्य प्रभावेण प्राप्ता मुक्तिः सुदुर्लभा ॥ ५१ ॥
ततः परं सूर्यतीर्थं सर्व पापप्रमोचनम् ।

वैरोचनेन बलिना सूर्यस्त्वाराधितः पुरा ॥ ५२ ॥
भ्रष्टराज्येन बलिना धनकामेन वै पुरा ।
ऊर्द्ध्वबाहुर्निराहारस्तप्त चानुत्तमं तपः ॥ ५३ ॥
साग्रं सम्वत्सरं देवि ततः कामानवाप्नुयात् ।

बलिरुवाच —

भ्रष्टराज्योऽस्मि देवेश पाताले निवसाम्यहं ।
वित्तेनापि विहीनस्य कुटुम्बभरणं कुतः ॥ ५४ ॥

हे वसुन्धरे ! वह अत्यन्त बुद्धिमान, विष्णु भक्त तथा जातिस्मर (पूर्व जन्म का ज्ञाता) के रूप में प्रसिद्ध हुआ ॥ ५१ ॥ मथुरा तीर्थ के प्रभाव से दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त हुआ । मथुरा से आगे पाप नाशक 'सूर्य तीर्थ' है । वहाँ प्राचीनकाल में विरोचन के पुत्र बलि राजा ने सूर्याराधन किया था ॥ ५२ ॥ राज्य के नष्ट होने पर धन की कामना से बलि ने ऊपर बाहु करके, निराहार रहकर एक वर्ष तक उग्र तप किया ॥ ५३ ॥ बलि बोला — हे देवेश ! मैं राज्य-भ्रष्ट (च्युत) हो गया हूँ, अतः पाताल लोक में निवास करता हूँ । धन से विहीन होने के कारण अपने परिवार का पोषण किस प्रकार करूँ ? ॥ ५४ ॥

मुकुटात्तस्य वै सूर्य्यो ददौ चिन्तामणिं ततः ।
चिन्तामणिं तु संप्राप्य पातालमगमत्तदा ॥ ५५ ॥
तस्मिन्तीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तत्राथ मुंचते प्राणान् मम लोकं सगच्छति ॥ ५६ ॥
आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
तस्मिन्स्नातो नरो देवि अश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५७ ॥
यत्र ध्रुवेण संतप्तमिच्छया परमं तपः ।
तत्र वै स्नानमात्रेण ध्रुवलोके महीयते ॥ ५८ ॥

बलि की आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य देव ने मुकुट से निकालकर चिन्तामणि प्रदान की, तदन्तर बलि ने पाताल लोक में गमन किया ॥ ५५ ॥ इस तीर्थ में स्नान करके समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त होती है । प्राणत्याग करने से मेरे लोक की प्राप्ति हो जाती है ॥ ५६ ॥ रविवार के दिन, संक्रांति, चन्द्र तथा सूर्यग्रहण के समय स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

जहाँ ध्रुव ने स्वेच्छा से कठिन तप किया था, वहाँ स्नान करने से ध्रुवलोक में सम्मान प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
ध्रुवतीर्थे तु वसुधे श्राद्धं यः कुरुते नरः ॥ ५९ ॥
पितॄन्संतारयेत्सर्वान् पितृपक्षे विशेषतः ।
दक्षिणे ध्रुवतीर्थस्य ऋषितीर्थ प्रकीर्तितम् ॥ ६० ॥
तस्मिन्स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ ६१ ॥
दक्षिणे ऋषितीर्थस्य मोक्षतीर्थं वसुंधरे ।
स्नानमात्रेण वसुधे मोक्षं प्राप्नोति मानव ॥ ६२ ॥

हे वसुधे ! ध्रुव तीर्थ में जो नर विशेष रूप से पितृ पक्ष में श्राद्ध करता है, उसके प्रभाव से उसके पितृगणों का उद्धार हो जाता है । ध्रुवतीर्थ के दक्षिण में 'ऋषितीर्थ' है ॥ ५९-६० ॥

यहाँ स्नान करके मनुष्य मेरे धाम में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, यहीं प्राण त्याग होने पर मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

हे देवि ! ऋषि तीर्थ के दक्षिण में मोक्ष नामक तीर्थ है, यहाँ स्नान मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ६२ ॥

तत्र स्नानेन दानेन मम लोके महीयते ।
तत्रैव कोटितीर्थं हि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ६३ ॥
तत्र स्नानेन दानेन मम लोके महीयते ।
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दानं दत्त्वा तु शक्तितः ॥ ६४ ॥
तारिताः पितरस्तेन तथैव प्रपितामहाः ।
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६५ ॥
तत्रैव बोधतीर्थे तु पितॄणामपि दुर्लभम् ।
पिण्डं दत्त्वा तु वसुधे पितृलोकं स गच्छति ॥ ६६ ॥

वहाँ स्नान, दान करने से मेरे लोक में सम्मान प्राप्त होता है । वहीं समीप में देवताओं के लिए दुर्लभ कोटि नामक तीर्थ है ॥ ६३ ॥ इस तीर्थ में स्नान करके यथाशक्ति दान करने से प्रपितामह आदि पितृगणों का उद्धार हो जाता है तथा ब्रह्मलोक में निवास प्राप्त होता है ॥ ६४-६५ ॥ पितृगणों के लिए

अत्यन्त दुर्लभ बोधतीर्थ है । हे वसुधे ! यहाँ पितृगणों को पिण्डदान करने से पितृलोक प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥

गयापिण्डप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम् ।
तत्फलं लभते देवि ज्येष्ठे बोध्यां न संशयः ॥ ६७ ॥
द्वादशैतानि तीर्थानि देवानां दुर्लभानि च ।
स्नानं दानं जपं होमं सहस्रगुणितं भवेत् ॥ ६८ ॥
एषां स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
श्रुत्वा तीर्थस्थ माहात्म्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ६९ ॥
इत्यादि वाराह - पुराणे मथुरा माहात्म्ये मथुरा - तीर्थ - प्रशंसा नाम प्रथमोऽध्यायः ।

गया में पिण्डदान करने से जो फल प्राप्त होता है उसी के तुल्य फल ज्येष्ठ मास में बोधतीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥

इस प्रकार ये बारह तीर्थ देवताओं के लिए दुर्लभ हैं, यहाँ स्नान, दान, जप, होमादि करने से सहस्रगुना फल प्राप्त होतां है ॥ ६८ ॥

इन तीर्थों के स्मरण मात्र से ही समस्त पाप नष्ट होते हैं । इस तीर्थ माहात्म्य को सुनकर सम्पूर्ण कामनाओं का उपशमन हो जाता है ॥ ६९ ॥

मथुरातीर्थ प्रशंसा नामक प्रथम अध्याय सम्पूर्ण

❀ ❀ ❀

द्वितीयोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

उत्तरे त्वसिकुण्डस्य तीर्थं तु नवसंज्ञकम् ।
नवतीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १ ॥
तत्रैव स्नानमात्रेण सौभाग्यं जायते ध्रुवम् ।
रूपवंतः प्रजायन्ते स्वर्गलोके न संशयः ॥ २ ॥
तस्मिन्स्नातो नरो देवि यम लोकं न गच्छति ।
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे ॥ ३ ॥
यस्मिन् संयमने तीर्थे यद्वृत्तं हि पुरातनं ।
कश्चित्पाप समाचारो निषादो दुष्टमानसः ॥ ४ ॥

असिकुण्ड के उत्तर में नवतीर्थ स्थित है ऐसा तीर्थ न हुआ है न (भविष्य में) होगा ॥ १ ॥

वहाँ स्नान करने मात्र से ही अटल सौभाग्य की प्राप्ति होती है तथा स्वर्गलोक में दिव्य रूपवान् होकर स्वर्ग के सुखों का उपभोग करके निस्संदेह मेरे लोक में जाता है ॥ २ ॥ यहाँ स्नान करने से मनुष्य यमलोक गमन नहीं करते हे वसुन्धरे ! अन्य वर्णन करता हूँ उसे श्रवण करो ॥ ३ ॥

प्राचीन समय में संयमन तीर्थ में जो घटित हुआ, वह सुनो । दुष्टवृत्तियों से युक्त एक पापी निषाद था ॥ ४ ॥

वसते नैमिषारण्ये सुप्रतीतः सुपापकृत् ।
केनचित्वथकालेन सोऽगच्छन्मथुरां पुरीम् ॥ ५ ॥
तत्र प्राप्य च कालिन्दीं कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां तर्त्तुकामो निषादजः ॥ ६ ॥
त्वरया यमुनां तेन प्राप्तं संयमनं शुभे ।
तत्र तीर्थे तु पतितौ शिरस्थौ तदुपानहौ ॥ ७ ॥

सदृष्टः पतिते तत्र यमुनासलिले शुभे ।
ततोऽमज्जदसौ पापः तस्मिंस्तीर्थे वसुंधरे ॥ ८ ॥

नैमिषारण्य में निवास करते हुए सुप्रतीत नामक वह पापी निषाद कुछ समय के लिए मथुरा गया । कृष्णपक्षीया चतुर्दशी को कालिन्दी (यमुना) में तैरने की उसकी इच्छा हुई ॥ ५-६ ॥ हे शुभे ! वह तैरता हुआ संयमन तीर्थ (स्वामी घाट) तक पहुँच गया, उसने सिर पर रखे हुए जूतों को यमुना के पवित्र जल में गिरते हुए देखा । हे पृथ्वी ! वह उस तीर्थ के जल में डूब गया ॥ ७-८ ॥

मग्नमात्रः स तत्राथ गतप्राणोऽभवत्तदा ।
तस्य तीर्थप्रभावेण जातोऽसौ पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥
सौराष्ट्रविषये देवि क्षत्रियोऽभूद्धनुर्धरः ।
नाम्ना क्षत्रधनुर्नाम सोऽभवत्प्रियदर्शनः ॥ १० ॥
पालयामास वसुधां क्षत्रधर्मसमाश्रितः ।
तेनोढा काशिराजस्य पीवरी नामतः शुभा ॥ ११ ॥
पत्नी शतानां मुख्यानां प्रवरा सा वसुंधरे ।
तथाऽसौ रमयामास उद्यानेषु वनेषु च ॥ १२ ॥

जल में डूबते ही उसका प्राणान्त हो गया । उस तीर्थ के प्रभाव से वह सौराष्ट्र का धनुर्धर क्षत्रिय राजा हुआ । उस प्रियदर्शी राजा का नाम क्षत्र धनु हुआ ॥ ९-१० ॥ क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करते हुए उसने प्रजा का पालन किया तथा काशी के राजा की पीवरी नामक कन्या से उसका विवाह हुआ ॥ ११ ॥ हे वसुन्धरा ! वह सैकडों मुख्य रानियों में से श्रेष्ठ पत्नी बनी । उस राजा ने पावरी के साथ वनों और उपवनों में विहार किया ॥ १२ ॥

प्रासादेषु च रम्येषु नदीनां पुलिनेषु च ।
प्रजा पालयतस्तस्य दानं च ददतस्तदा ॥ १३ ॥
कालो गच्छति राज्ञस्तु भोगासक्तो न विन्दति ।
भोगासक्तस्य वसुधे वर्षाणि सप्ततिर्गता ॥ १४ ॥
पुत्राः सप्त तथा जाता कन्या पञ्च सुशोभनाः ।
राज्ञापञ्चापि दुहिताः परिणीताः सुलोचनाः ॥ १५ ॥
पुत्रान्संस्थापयामास स्थानेषु वसुधाधिपान् ।
पीवर्य्यासह सुप्तश्च रात्रौ स वसुधाधिपः ॥ १६ ॥

सुन्दर भवनों तथा नदी तटों पर बिहार करते हुए उसने प्रजापालन किया तथा प्रचुर द्रव्य दान में दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकार भोग-विलास-रत राजा ने सत्तर वर्ष व्यतीत किये । इसी अवधि में उसको सात पुत्रों तथा पाँच कन्याओं की प्राप्ति हुई । पाँचों सुन्दर कन्याओं का विवाह भी कर दिया ॥ १४-१५ ॥ तथा पुत्रों को यथा स्थान नियुक्त कर दिया अर्थात् सबको अलग-अलग राज्य दे दिये । एकदिन राजा रात्रि को पीवरी के साथ सोया हुआ था ॥ १६ ॥

तत्र प्रबुद्धो नृपतिर्हाहेति वदते मुहुः ।
स्मृत्वा तु मथुरां देवीं स्मृत्वा संयमनं शुभम् ॥ १७ ॥
ततः सा पीवरी राज्ञी भर्तारं परिपृच्छति ।
किं त्वया भाषितं देव मथुरेति पुनः पुनः ॥ १८ ॥
एवं संपृच्छते देवि भर्त्तारं शुभदर्शना ।
प्रियाया वचनं श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥
मम सुप्तप्रबुद्धस्य असंबद्धं प्रभाषतः ।
निद्रावशस्य वचनं न त्वं प्रष्टुमिहार्हसि ॥ २० ॥

सहसा जागृत होकर राजा 'हाय-हाय' चिल्लाने लगा तथा मथुरा एवं संयमन तीर्थ का स्मरण करने लगा ॥ १७ ॥ पीवरी रानी ने राजा से कहा-- आप बार-बार मथुरा-मथुरा का उच्चारण क्यों कर रहे हैं ? ॥ १८ ॥ शुभदर्शना रानी के पूछने पर राजा ने कहा– मुझ सुप्त, अर्द्ध जागृत तथा अनर्गल प्रलाप करने वाले व्यक्ति से इस प्रकार की बातें क्यों पूछ रही हो । अर्थात् मैं सुप्तावस्था में बोल रहा था जिसके संबंध में तुम्हें पूछना नहीं चाहिए ॥ १९-२० ॥

पीवर्युवाच–

कथयस्व ममाद्यत्वं यद्यहं तव वल्लभा ।
प्राणान्त्यजाम्यहं देव यदि गोपयसे मम ॥ २१ ॥
प्रियाया वचनं श्रुत्वा प्रोवाच स नराधिपः ।
अवश्यं यदि वक्तव्यं गच्छावो मथुरां पुरीम् ॥ २२ ॥
तत्र गत्वा यथातत्त्वं कथयिष्यामि भामिनि ।
ददस्व विपुलं दानं ब्राह्मणेभ्यः सुलोचने ॥ २३ ॥
पुत्रान्संस्थाप्य दौहित्रान् स्वेस्वे स्थाने निवेश्य च ।
कोशं रत्नानि ग्रामांश्च पुत्रान्वीक्ष्य पुनः-पुनः ॥ २४ ॥

पीवरी बोली– यदि मैं आपको प्रिय हूँ, तो मुझे प्रारम्भ से पूरा वृत्तान्त सुनाइये । यदि कुछ भी गुप्त रखा, तो अपने प्राण त्याग दूँगी ॥ २१ ॥ प्रिया के वचन सुनकर राजा ने कहा– यदि सुनना ही चाहती हो, तो हम दोनों मथुरा चलते हैं । वहाँ जाकर ही पूर्ण वृत्तान्त बताऊँगा । हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम ब्राह्मणों को प्रभूत द्रव्यादि दान करो । पुत्र और दौहित्रों को (पुत्री के पुत्र धेवते) विविध स्थानों पर नियुक्त करके कोश, ग्राम तथा रत्नादि उनको समर्पित किये ॥ २३-२४ ॥

ततः सम्मानयामास जनं पुरनिवासिनम् ।
पितृपैतामहं राज्यं पालितव्यं यथाक्रमम् ॥ २५ ॥
राज्ये पुत्रान्नियोक्ष्यामि यदि वा रोचतेऽनघा ।
राज्यं पुत्रान्कलत्रं च बंधुवर्गं तथैव च ॥ २६ ॥
नित्यमिच्छतिलोकोऽयं वयश्चेच्छान्वितं तथा ।
एवं ज्ञात्वाप्रयत्नेन कर्त्तव्यं चात्मनोहितम् ॥ २७ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गच्छावो मथुरां पुरीम् ।
अहो कष्टं यदस्माभिः पुराराज्यमनुष्ठितम् ॥ २८ ॥

समस्त परिजनों तथा प्रजाजनों को सम्मानित किया । पुत्रों को आज्ञा दी कि वह सब क्रमानुसार पैतृक राज्य का उपभोग करें तथा प्रजा का पालन करें ॥ २५ ॥

हे निष्पाप प्रजाजनो ! अगर आप लोग आज्ञा दें तो अपने पुत्रों को राज्य पर नियुक्त करूँ । इस लोक में मनुष्यों को राज्य, पुत्र, स्त्री तथा इष्ट-मित्रों की प्राप्ति की इच्छा रहती है । प्रत्येक मनुष्य मृत्यु की अपेक्षा जीवन चाहता है । यह जानकर आनन्दपूर्वक सबको प्रिय कार्य करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

अतः समस्त कार्य पूर्ण करके हम दोनों मथुरापुरी जायेंगे । राज्य कार्य चलाना अत्यन्त दुष्कर है ॥ २८ ॥

इदानीं तु मयाज्ञातं त्यागान्नास्ति परं सुखं ।
नास्ति विद्या समं चक्षुर्नास्ति चक्षुःसमं बलं ॥ २९ ॥
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्याग समं सुखं ।
यः कामान्नाप्नुयात्सर्वान्यः चैतान्केवलं त्यजेत् ॥ ३० ॥
प्रमाणं सर्वकामानां परित्यागो विधीयते ।

अभिषिच्य सुतं श्रेष्ठं[1] अनुयोज्य परान्बहून् ॥ ३१ ॥
ततः पौरजनं दृष्ट्वा चतुरङ्ग[2]बलान्वितः ।
ततः कालेन महता सम्प्राप्तो मथुरां पुरीम् ॥ ३२ ॥

अब मुझे यह विदित हो गया है कि त्याग से बढ़कर कोई सुख नहीं है, विद्या के समान चक्षु नहीं है तथा चक्षुओं के समान कोई बलशाली नहीं है ॥ २९ ॥ प्रीति (राग) के समान दुःख नहीं है, त्याग के समान सुख नहीं है ॥ ३० ॥ समस्त कामनाओं का परित्याग ही यथार्थ ज्ञान प्राप्ति है । अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकार देकर अन्य दूसरों को कार्यों में नियुक्त किया । नगर निवासियों से सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् चतुरङ्गिणी सेना सहित कई दिन यात्रा करके राजा मथुरा पहुँचे ॥ ३२ ॥

तेन दृष्टा च सा रम्या वसवस्य पुरी यथा ।
तीर्थैर्द्वादशभिर्युक्ता पुण्यापापहरा शुभा ॥ ३३ ॥
रम्यं मधुवनं नाम विष्णुस्थानमनुत्तमं ।
यं दृष्ट्वा मनुजो देवि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
वनं तालवनं नाम द्वितीयं विपिनोत्तमं ।
तत्र स्नातो नरो देवि कृत्यकृत्यो हि जायते ॥ ३५ ॥
वनं कुमुदवनं मंगलानामनुत्तमम् ।
एकादशी कृष्णपक्षे मासि भाद्रपदे हि या ॥ ३६ ॥

मथुरापुरी उस समय देवनगरी अमरावती के समान प्रतीत हो रही थी । शुभकारिणी, पाप हारिणी, पुण्यमयी मथुरा में बारह तीर्थ स्थल हैं ॥ ३३ ॥

विष्णु का निवास स्थल 'मधुवन' नामक प्रथम पुण्यमय क्षेत्र है । जिसके दर्शन करके मनुष्य की समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं ॥ ३४ ॥

तालवन वनों में उत्तम द्वितीय वन है, यहाँ स्नान करने पर नर कृतार्थ हो जाता है ॥ ३५ ॥

मङ्गलमय वनों में श्रेष्ठ कुमुदवन तृतीय है । भाद्रपद मास में कृष्ण पक्षीया एकादशी को स्नान करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है ॥ ३६ ।

तत्र स्नातो नरो देवि रुद्रलोके महीयते ।

---

१. ज्येष्ठं ।
२. चतुरङ्गिणी सेना - गज सेना, हय सेना, रथ सेना तथा पदाति सेना ।

चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
तत्र गत्वा नरो देवि मम लोके महीयते ।
विमलस्य तु कुण्डे तु सर्वपापैः विमोक्षते ॥ ३८ ॥
यस्तु प्रमुञ्चते प्राणान् मम लोकं सगच्छति ।
पञ्चमं बहुलावनं वनस्थानमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
तत्र गत्वा नरो देवि अग्निस्थानं स गच्छति ।
यमुनायाः परेपारे देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४० ।

चतुर्थ वन काम्यक वन है । इस स्थल का दर्शन करके मनुष्य मेरे लोक में सम्मानित होता है । वहीं पर स्थित विमल कुण्ड में स्नान करके प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है, प्राण त्याग करने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥ ३७-३८ ॥

पाँचवाँ बहुलवन भी उत्तम वन है, यहाँ गमन करने से मनुष्य अग्नि लोक में पहुँचता है । यमुना के उस पार देवताओं के लिए दुर्लभ एक वन है ॥ ३९-४० ॥

अस्ति भद्रवनं नाम वनं वनस्थानमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा तु वसुधे मद्भक्तो मत्परायणः ॥ ४१ ॥
तद्वनस्य प्रभावेण नागलोकं स गच्छति ।
सप्तमं खदिरं नाम वनानां वनमुत्तमम् ॥ ४२ ॥
तद्वनस्य प्रभावेण मम लोकं स गच्छति ।
महावनं चाष्टमं तु सदैव तु मम प्रियम् ॥
तस्मिन् स्नात्वा तु मनुजो इन्द्र लोके महीयते ॥ ४३ ॥
लोहजंघवनं नाम लोहजंघेन रक्षितम् ।
नवमं तु वनं देवि सर्वपातकनाशनम् ॥ ४४ ॥

जिसका नाम भद्रवन है, मेरा भक्त और मुझ में प्रीति रखने वाला मनुष्य उस तीर्थ के प्रभाव से नागलोग को प्राप्त करता है । सातवाँ खदिर वन है ॥ ४२ ॥ उसके प्रभाव से भी मेरे लोक की प्राप्ति होती है । आठवाँ वन महावन नाम से विख्यात है । जो मुझे अत्यन्त प्रिय है । यहाँ स्थित कुण्ड में स्नान करके मनुष्य को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ समस्त विपत्तियों का प्रणाशक नवाँ लोहजङ्घवन है । लोहजङ्घ इस वन का रक्षक था ॥ ४४ ॥

वनं बिल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम् ।
तत्र गत्वा तु मनुजो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४५ ॥
एकादश्यां तु भाण्डीरं योगिनां प्रियमुत्तमम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण नरो गर्भं न पश्यति ॥ ४६ ॥
भाण्डीरं समनुप्राप्य वनानां वनमुत्तमम् ।
वासुदेवं ततो दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४७ ॥
वृन्दावनं द्वादशकं वृन्दयापरिरक्षितम् ।
मम चातिप्रियं भूमे सर्वपातकनाशनम् ॥ ४८ ॥

बिल्व नामक दसवाँ वन है जिसकी देवता भी पूजा करते हैं । वहाँ भ्रमण करने से मनुष्य ब्रह्मलोक गमन करता है ॥ ४५ ॥

ग्यारहवाँ वन भाण्डीर है जो योगियों को अत्यंत प्रिय है । उस स्थल के केवल दर्शन करने मात्र से ही पुनर्जन्म-बन्धन से मुक्ति होती है ॥ ४६ ॥

वनों में श्रेष्ठ भाण्डीरवन में वासुदेव (श्रीकृष्ण) के दर्शन से पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ४७ ॥

वृन्दा देवी (तुलसी, वृन्दा नामक सखी) के द्वारा रक्षित बारहवाँ वन वृन्दावन है । समस्त पापापहारक यह स्थल मुझे अत्यंत प्रिय है ॥ ४८ ।

वृन्दावनं च गोविन्दं ये पश्यन्ति वसुन्धरे ।
न ते यमपुरीं यान्ति पुण्यकृतां गतिम् ॥ ४९ ॥

इत्यादि मथुरामाहात्म्ये मथुरातीर्थमाहात्म्यनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे वसुधे ! वृन्दावन भ्रमण तथा गोविन्द (श्रीकृष्ण) के दर्शन करके नर यमपुरी गमन नहीं करते अपितु पुण्यात्मा पुरुषों की गति को प्राप्त करते हैं । अर्थात् सर्वथा मुक्त हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

मथुरातीर्थमाहात्म्य नामक द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण

❀ ❀ ❀

तृतीयोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

एवं विधां तु मथुरां दृष्ट्वा तौ मुदमापतुः ।
एवं तु वसतस्तत्र राज्ञस्तस्य वसुन्धरे ॥ १ ॥
पप्रच्छ च तदा भार्या गुह्यं पूर्वं सुवल्लभं ।
कथितं च पुरातेन यद् वृत्तं हि पुरातनम् ॥ २ ॥
तवापि यत्पुरावृत्तं गुह्यं तत् कथयस्व मे ।
विहस्य पीवरी राज्ञी त्विदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
अहं तु पीवरी नाम्नी गङ्गातीरनिवासिनी ।
आगता मथुरा नूनं कुमुदस्य च द्वादशीम् ॥ ४ ॥

भगवान् वाराह ने कहा – इन सब तीर्थों से युक्त मथुरापुरी को देखकर राजा तथा पीवरी रानी अत्यंत प्रसन्न हुए । हे पृथ्वी ! मथुरा में ही निवास करते हुए पीवरी रानी ने उस गुप्त वृत्तान्त के संबंध में पूछा, जिसके संबंध में राजा ने पहले चर्चा की थी । राजा ने वह सब बताया, जो कुछ पहले घटित हुआ था ॥ १-२ ॥ तुम्हारा भी जो कुछ प्राचीन वृत्तान्त है उसको कहो । राजा के इस प्रकार पूछने पर पीवरी रानी ने हँसकर कहा – मैं गंगा के तट पर रहने वाली पीवरी नामक स्त्री हूँ । कार्तिक मास की द्वादशी को मैं मथुरा आई थी ॥ ३-४ ॥

नावमारोहमाना हि प्रतिता यमुनाजले ।
गतप्राणा समुत्पन्ना तत्रैव वसुधाधिप ॥ ५ ॥
तस्य तीर्थप्रभावेन जाता काशिपते सुता ।
त्वया विवाहिता राजन् जातिस्मरणसंभवा ॥ ६ ॥
अस्य तीर्थप्रभावेन धर्मयुक्तातथाऽनघ ।
धारापतनके तीर्थे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ७ ॥
त्यक्त्वा चात्मतनुं देवि धारापतनके शुभे ।

त्यक्त्वा प्राणांश्च वसुधे नागलोकं गता हि सा ॥ ८ ॥

नौका में चढ़ते समय यमुना जल में गिर गई । और वहीं मेरा प्राणान्त हो गया ॥ ५ ॥

उस तीर्थ के प्रभाव से काशिराज की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई । हे राजन् ! आपके साथ विवाह हुआ । इस तीर्थ के प्रभाव से मुझे पूर्वजन्म का स्मरण हो रहा है ॥ ६ ॥ तथा धर्म में प्रवृत्ति हो गई है । धारापतनक तीर्थ में प्राण त्याग करके अपने शरीर को छोड़कर वह नागलोक को चली गयी ॥ ८ ॥

यमुनेश्वरं च सम्प्राप्य त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
विष्णुलोकं च संप्राप्य दिव्यमूर्तिश्चतुर्भुजः ॥ ९ ॥
धारापतनके स्नात्वा नाकपृष्ठे स मोदते ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्ममलोकं स गच्छति ॥ १० ॥
अतः परं नागतीर्थं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
यत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ११ ॥
घण्टाभरणकं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनं ।
यस्मिन्स्नातो नरो देवि सूर्यलोके महीयते ॥ १२ ॥

यमुनेश्वर को प्राप्त करके प्राण-त्याग कर विष्णुलोक में चतुर्भुज मूर्ति को प्राप्त किया ॥ ९ ॥ धारापतनक तीर्थ में स्नान करने से स्वर्गिक सुखों की प्राप्ति होती है । प्राण त्याग करने से विष्णु लोक प्राप्त होता है ॥ १० ॥ इसके पश्चात् तीर्थों में श्रेष्ठ नागतीर्थ है । यहाँ स्नान करके स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है ॥ ११ ॥

घण्टाभरणक तीर्थ समस्त पापों से मुक्त करता है, जिसमें स्नान करके मनुष्य सूर्य लोक में सम्मानित होता है ॥ १२ ॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे ॥ १३ ॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रह्मलोकेऽपि विश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च निपातो नियताशनः ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातो विष्णुलोकं स गच्छति ।
सोमतीर्थे तु वसुधे पवित्रे यमुनाम्भसि ॥ १५ ॥

यत्र मां पश्यते सोमो द्वापरे युगसंस्थिते ।
तत्राभिषेकं कुर्वन्ति स्वस्वकर्मप्रतिष्ठिताः ॥ १६ ॥

यहाँ पर प्राण त्याग से मेरे लोक की प्राप्ति होती है । अन्य स्थलों का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥ १३ ॥ ब्रह्मलोक नामक उत्तम तीर्थ विख्यात है । वहाँ नियमित स्नान करने तथा जलपान करने से ब्रह्मा की अनुज्ञा के अनुसार विष्णुलोक की प्राप्ति होती है । हे वसुधे ! यमुना के पवित्र जल से युक्त सोमतीर्थ में जहाँ द्वापर युग में चन्द्र को मेरा दर्शन प्राप्त होता है । अपने-अपने कर्मों में प्रतिष्ठित मनुष्य वहाँ स्नान करते हैं ॥ १६ ॥

मोदते सोमलोके तु एवमेव न संशयः ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ १७ ॥
सरस्वत्याश्च पतनं सर्वपापहरं शुभम् ।
यत्र स्नातो नरो देवि अवर्णोऽपि यतिर्भवेत् ॥ १८ ॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि माथुरे मम मण्डले ।
यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ १९ ॥
स्नानमात्रेण मनुजो मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ २० ॥

उससे निस्संदेह सोम लोक प्राप्त होता है । वहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ सरस्वती नदी का जहाँ पतन होता है, वह शुभतीर्थ समस्त पापापहारक है। जहाँ स्नान करने से अवर्ण भी यति हो जाता है ॥ १८ ॥

मेरे मथुरा मण्डल में जो अन्य तीर्थ हैं, उनका वर्णन करता हूँ । तीन रात्रियों तक उपवास करने वाला जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, केवल स्नान करने से ही ब्रह्महत्या से छुटकारा मिलता है । यहाँ प्राण त्यागने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ १९-२० ॥

दशाश्वमेधं ऋषिभिः पूजितं सर्वदा पुरा ।
तत्र ये स्नान्ति मनुजास्तेषां स्वर्गो न दुर्लभः ॥ २१ ॥
मथुरापश्चिमे पार्श्वे सततं ऋषिपूजितम् ।
ब्रह्मणा सृष्टिकाले तु मनसा निर्मितं पुरा ॥ २२ ॥
मानसं नामतीर्थं तु ऋषिभिः पूजितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति मृतास्ते न पुनर्भवा ॥ २३ ॥

तीर्थं तु विघ्नराजस्य पुण्यं पापहरं शुभम् ।
तत्र स्नातं च मनुजं विघ्नराजो न पीडयेत् ॥ २४ ॥

दशाश्वमेध तीर्थ जो ऋषियों के द्वारा पूजित है, वहाँ स्नान करने से स्वर्ग सुगमता से प्राप्त हो जाता है ॥ २१ ॥

मथुरा के पश्चिम में ऋषिपूजित मानस तीर्थ है, सृष्टि के समय ब्रह्मा ने इस तीर्थ को मन से प्रकट किया था । स्नान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है तथा पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है ॥ २२-२३ ॥ पापों को हरण करने वाला अन्य मङ्गलमय तीर्थ विघ्नराज है, यहाँ स्नान करने वाले मनुष्य को गणेश जी कष्ट नहीं देते ॥ २४ ॥

अष्टम्यां चतुर्दश्यां चतुर्थ्यां च विशेषतः ।
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातं न पीडयति विघ्नराट् ॥ २५ ॥
विद्यारम्भेषु सर्वेषु यज्ञदानक्रियासु च ।
अविघ्नं करोति वसुधे सततं पार्वतीसुतः ॥ २६ ॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्ममलोकं स गच्छति ।
ततः परं कोटितीर्थं पवित्रं परमं महत् ॥ २७ ॥
तत्रैव स्नानमात्रेण कोटितीर्थफलं लभेत् ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणांल्लोभमोहविवर्जितः ॥ २८ ॥
सोमलोकमतिक्रम्य मम लोकं स गच्छति ।
अतः परं शिवक्षेत्रं अर्द्धकोशं तु दुष्करम् ॥ २९ ॥

अष्टमी, चतुर्दशी तथा विशेषरूप से चतुर्थी तिथि को स्नान करने से विघ्नराज गणेश कष्ट नहीं देते ॥ २५ ॥

विद्या का आरम्भ करते समय तथा समस्त यज्ञ, याग, दानादि कर्मों को करते समय पार्वती पुत्र गणेश विघ्न-विनाश करते हैं ॥ २६ ॥

वहाँ प्राण त्याग करने से मेरे लोक में मनुष्य गमन करता है । इसके पश्चात् परम पवित्र तथा महान् कोटि नामक तीर्थ है ॥२७॥

वहाँ स्नान करने मात्र से ही करोड़ों तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है । लोभ-मोह का त्याग करके जो प्राण त्याग करता है । वह सोमलोक का अतिक्रमण करके मेरे लोक को प्राप्त करता है कोटि तीर्थ से आधा ओस दूर शिव क्षेत्र स्थित है ॥ २८-२९ ॥

तत्र स्थितो वरारोहे मथुरां रक्षते सदा ।
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च माथुरं लभते फलम् ॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान्ममे लोकं स गच्छति ॥ ३० ॥

इत्यादि मथुरा माहात्म्ये यमुनातीर्थ प्रभाव वर्णननाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हे सुकटि ! शिव यहाँ स्थित होकर मथुरा की रक्षा करते हैं, वहाँ स्नान तथा दर्शन करके मथुरा निवासी उत्तम फल प्राप्त करते हैं । यहाँ प्राण त्यागने से मेरे लोक की प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

मथुरातीर्थ प्रभाव नामक माहात्म्य का तृतीय अध्याय सम्पूर्ण ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀

चतुर्थोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि मर्त्यलोके सुदुर्लभम् ।
अनन्तं विदितं तीर्थं अचलं ध्रुवमव्ययम् ॥ १ ॥
तत्र नित्यं स्थितं देवि लोकानां हितकाम्यया ।
मां दृष्ट्वा मनुजा देवि मुक्तिभाजो भवन्ति ते ॥ २ ॥
अयने[१] विषुवे[२] चैव संक्रान्तौ च वसुन्धरे ।
अनन्तं तं समासाद्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३ ॥
अक्रूरे च पुनः स्नात्वा राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ४ ॥

वाराह भगवान ने कहा – मृत्युलोक में स्थित अत्यन्त दुर्लभ अन्य तीर्थों का वर्णन करता हूँ । अनन्त तीर्थ अचल, शाश्वत तथा अविनाशी है ॥ १ ॥ हे देवि ! जगत् के कल्याण की कामना से मैं इस तीर्थ में निवास करता हूँ । मेरे दर्शन करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

अयन, विषुव तथा संक्रांति काल में अनन्ततीर्थ में पहुँचने से समस्त पाप नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥ अक्रूर तीर्थ में सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान करने से राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों के समान फल की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

तीर्थराजं हि चाक्रूरं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
तत्फलं समवाप्नोति सर्वतीर्थावगाहनात् ॥ ५ ॥
अस्मिन्तीर्थे पुरावृत्तं तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
नाम्ना तु सुधनो नाम ममभक्तः सदैव हि ॥ ६ ॥

---

१. अयन – सूर्य के कर्क राशि में आने पर दक्षिणायन एवं मकर राशि में आने पर उत्तरायण होता है । सूर्य की यह षाण्मासिक गति एवं स्थिति ही 'अयन' है ।

२. विषुव – जिस समय दिन और रात्रि का मान बराबर होता है उसका नाम 'विषुव' है। यह स्थिति प्रायः २१ मार्च और २३ सितम्बर को होती है।

धनधान्य समायुक्तो बंधुपुत्रसमन्वितः ।
बन्धुपुत्रकलत्रैश्च गृहे वसति सत्तमः ॥ ७ ॥
पुत्रदाराममत्वेन मम भक्तो वसुन्धरे ।
गच्छन्ति दिवसास्तस्य मासाः सम्वत्सरास्तथा ॥ ८ ॥

अत्यन्त गुप्तस्थल तीर्थराज अक्रूर में स्नान करने से समस्त तीर्थों में स्नान करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ यहाँ जो पूर्व घटना घटित हुई थी उसे श्रवण करो – मेरा सुधन नामक परम भक्त था ॥ ५-६ ॥ वह धन धान्य से परिपूर्ण तथा मित्रपुत्रादि से युक्त था । बन्धु, पुत्र, स्त्री आदि के साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ पुत्र तथा स्त्री आदि के साथ ममतापूर्ण व्यवहार तथा मेरी भक्ति करते हुए उसने दिन, मास तथा वर्ष व्यतीत किये ॥ ८ ॥

करोति गृह कृत्यानि धनोपायेन नित्यशः ।
मानकूटं तुलाकूटं न करोति च कर्हिचित् ॥ ९ ॥
एवं च वसतस्तस्य बहवो वत्सरा गताः ।
नित्यं कालं च कुरुते हरेः पूजनमुत्तमम् ॥ १० ॥
पुष्पदीपप्रदानेन चन्दनेन सुगन्धिना ।
उपचारेण दिव्येन धूपेन च सुगन्धिना ॥ ११ ॥
एकादश्यां च कुरुते पक्षयोरुभयोरपि ।
सोपवासस्तु वसुधे रात्रौ जागरणं शुभम् ॥ १२ ॥

व्यापार में हर समय प्रामाणिक रहता था । माप, तोल तथा वजन में कभी छल नहीं करता था । इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हुए । नित्य प्रति विष्णु का पूजन करता था । श्रद्धापूर्वक पुष्प, दीप, चन्दन, सुगन्धि, दिव्य धूपादि अर्पित करता था ॥ ९-११ ॥ दोनों पक्षों (कृष्ण, शुक्ल) की एकादशी का उपवास तथा रात्रि जागरण करता था ॥ १२ ॥

स गच्छति सदा काले अक्रूरं चैव जागरे ।
स गत्वा नृत्यते सुभ्रुममाग्रे चैव सर्वदा ॥ १३ ॥
सुधनस्तु वणिक्श्रेष्ठः कदाचिद्रात्रिजागरे ।
गच्छमानो गृहीतस्तच्चरणे ब्रह्मरक्षसा ॥ १४ ॥
कृष्णवर्णो महावीर्यो ऊर्द्ध्वकेशो भयङ्करः ।
पादे गृहीत्वा सुधनं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

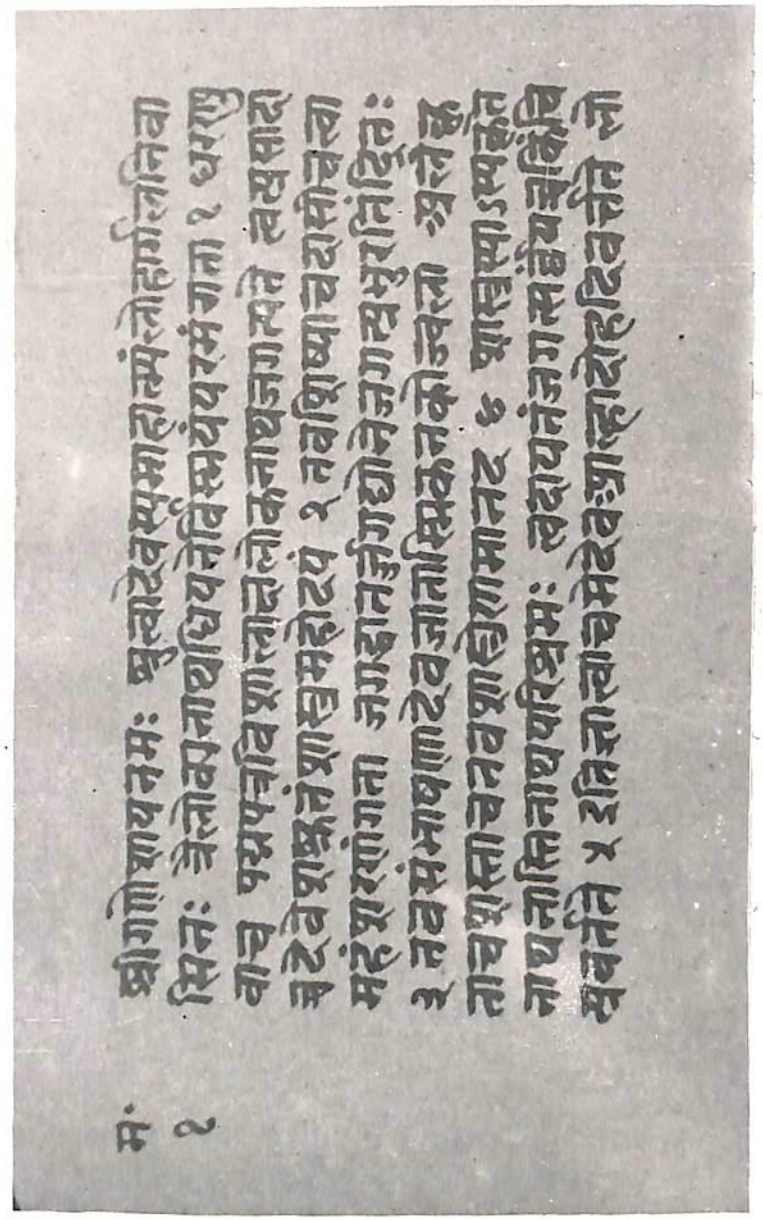

मथुरा-माहात्म्य पत्राङ्क १ वर्सो

राक्षसोऽहं वणिक्श्रेष्ठ वसामि वनमाश्रितः ।
त्वामद्य भक्षयिष्यामि तृप्तिं यास्यामि शाश्वतीम् ॥ १६ ॥

नित्य प्रति अक्रूर तीर्थ पर जाकर वह धर्म की प्रतिमूर्ति मेरे विग्रह के समक्ष नृत्य किया करता था ॥ १३ ॥

एक दिन रात्रि जागरण करने के लिए वह वाणिक् मन्दिर जा रहा था, मार्ग में कृष्णवर्ण वाले, विशालकाय एक भयङ्कर ब्रह्म राक्षस ने उसे पकड़ लिया ॥ १४ ॥ पैर पकड़कर वह बोला – हे वणिक् श्रेष्ठ ! मैं वन में निवास करता हूँ । आज तुम्हारा भक्षण करके असीम तृप्ति को प्राप्त करूँगा ॥ १५-१६ ॥

सुधन उवाच –

प्रतीक्षस्व धनं मेऽद्य तव दास्यामि पुष्कलं ।
भक्षयिष्यसि गात्रं मे मिष्टान्नपरिपोषितम् ॥ १७ ॥
जागरं देवदेवस्य कर्तुमिच्छामि राक्षस ।
मम व्रतं सदा देवे भक्त्या जागर्ति चक्रिरे ॥ १८ ॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते देवसन्निधौ ।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रमादित्योदयनं प्रति ॥ १६ ॥
पश्चात् खादसि मे गात्रं जागराद्विनिवर्तितम् ।
विष्णोः संतोषणार्थाय ममेतद्व्रतमुत्तमम् ॥ २० ॥

सुधन बोला – तुम थोड़ी देर धैर्यपूर्वक मेरी प्रतीक्षा करो । मिष्टान्न आदि से पोषित मेरा शरीर भक्षण हेतु प्राप्त करोगे ॥ १७ ॥ हे राक्षस ! मेरा नित्य प्रण है कि मैं भक्तिपूर्वक जागृत रहकर देव मंदिर में जागरण करता हूँ ॥ १८ ॥ इसलिए देवता के समक्ष रात्रि जागरण करके प्रातःकाल सूर्योदय होने पर मैं शीघ्र ही आऊँगा ॥ १६ ॥ जागरण से लौटे हुए मेरे शरीर का तब तुम भक्षण कर सकोगे। विष्णु की प्रसन्नता हेतु यह मेरा उत्तम व्रत है ॥२० ॥

मा रक्षोव्रतभङ्गस्तु देवं नारायणं प्रति ।
जागरे विनिवृत्ते तु मां भक्ष यथेप्सितम् ॥ २१ ॥
सुधनस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मरक्षो क्षुधार्दितः ।
उवाच मधुरं वाक्यं वणिजं तदनन्तरम् ॥ २२ ॥
मिथ्या प्रभाषसे साधो त्वं पुनः कथमेष्यति ।
को तु रक्षो मुखाद्भ्रष्टो मानुषो यो निवर्तते ॥ २३ ॥

राक्षसस्य वचः श्रुत्वा स वणिक् वाक्यमब्रवीत् ।
सत्यमूलं जगत्सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥

हे राक्षस ! ईश्वर के प्रति गृहीत मेरे इस नियम को खण्डित मत करो । मेरे जागरण करके लौटकर आने पर इच्छानुसार भक्षण करना ॥ २१ ॥

सुधन का यह कथन सुनकर बुभुक्षित (भूखा) ब्रह्म राक्षस उस वणिक् से कहने लगा — हे सज्जन ! तुम झूठ बोल रहे हो, लौटकर पुनः क्यों आओगे ? क्योंकि राक्षस के मुख से छूटा हुआ मनुष्य पुनः स्वेच्छा से लौटकर नहीं आता ॥ २२-२३ ॥

राक्षस का कथन सुनकर वह वणिक् बोला — इस संसार का आधार सत्य है, सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है ॥ २४ ॥

यद्यहं च वणिक् पूर्वं कर्मणा न हि दूषितः ।
प्राप्तश्च मानुषो भावो विहितेनान्तरात्मना ॥ २५ ॥
श्रृणु तत्समयं रक्षो येनाहं पुनरागमम् ।
कृत्वा जागरणं तत्र नर्तयित्वा यथासुखम् ॥ २६ ॥
पुनरेष्याम्यहं रक्षो नासत्यं विद्यते मयि ।
सत्यमूलं जगत्सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २७ ॥
सिद्धिर्लभन्ति सत्येन ऋृषयो वेदपारगाः ।
सत्येन दीयते कन्या सत्यं जल्पन्ति ब्राह्मणाः ॥ २८ ॥

यदि मैं वणिक् पूर्वकर्म से दूषित नहीं हूँ तथा निश्चित् मन वाले मैंने मनुष्यभाव को प्राप्त किया है ॥ २५ ॥ हे राक्षस ! मेरी शपथ को सुनो, जिसकी रक्षा हेतु मैं अपनी इच्छानुसार जागरण तथा नृत्य करने के पश्चात् लौटकर तुम्हारे पास आऊँगा ॥ २६ ॥ हे राक्षस ! मैं पुनः लौटकर आऊँगा, मेरे जीवित रहते यह बात मिथ्या नहीं हो सकती क्योंकि सम्पूर्ण जगत् का आधार सत्य है । सब कुछ सत्य पर ही आधृत है ॥ २७ ॥ वेदज्ञ ऋृषि सत्य से ही सिद्धि प्राप्त करते हैं । सत्य के आधार पर ही कन्या का दान होता है । ब्राह्मण सदा सत्य बोलते हैं ॥ २८ ॥

सत्यं वदन्ति राजानः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।
सत्येन गम्यते स्वर्गे मोक्षं सत्येन गम्यते ॥ २९ ॥
सत्येन सूर्यस्तपति सत्यात्सोमो विराजते ।

यमः सत्येन हरते सत्यादिन्द्रो विराजते ॥ ३० ॥
वरुणश्च कुबेरश्च तौ च सत्ये प्रतिष्ठितौ ।
न चासत्यं वदिष्यामि ब्रह्मराक्षसकर्हिचित् ॥ ३१ ॥
नाशये चैव सत्यं तु यद्यहं नागमं पुनः ।
ब्रह्महत्या समे भूय यद्यहं नागमं पुनः ॥ ३२ ॥

राजागण सत्य के आधार पर राज्य करते हैं । सब कुछ सत्य पर आधृत है । सत्य से स्वर्ग प्राप्त होता है तथा मोक्षाप्ति भी सत्य से ही संभव है ॥ २९ ॥

सत्य से सूर्य प्रकाशित है, सत्य से ही चन्द्र की शोभा है । सत्य से यम प्राण हरण करता है तथा इन्द्र भी सत्य से ही सुशोभित है ॥ ३० ॥

वरुण और कुबेर सत्य से ही सम्मानित हैं । हे ब्रह्म राक्षस ! किसी प्रकार भी असत्य नहीं बोलूँगा ॥ ३१ ॥ यदि मैं लौटकर नहीं आया तो अपने सत्य को नष्ट कर दूँगा । ब्रह्म-हत्या-पाप का भागी बनूँगा ॥ ३२ ॥

गत्वा च पर दारांश्च काममोहप्रपीडितः ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ३३ ॥
दत्त्वा च भूमिदानं वै अपहारं करोति यः ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुरः ॥ ३४ ॥
पूर्वभुक्तां स्त्रियं चैव आत्मायां तु समाहिता ।
वर्जयन्ति च ये द्वेषा तेषां पापं भवेन्मम ॥ ३५ ॥
पाकभेदं हि यः कुर्य्यादात्मानो हि परस्य च ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ३६ ॥

कामान्ध होकर जो परस्त्री गमन करता है उस पाप का भोक्ता बनूँगा, यदि मैं लौटकर तुम्हारे पास नहीं आऊँगा ॥ ३३ ॥ भूमिदान करके पुनः उपभोग करने पर जो पाप होता है वह मुझे प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ जो द्वेषी पहले भोगी गई अपनी स्त्री का परित्याग कर देते हैं उन्हीं का पाप मेरा हो । अपने और पराये में जो पाक भेद (भोजन में भेद) करता है, मैं यदि नहीं आऊँगा तो उस पाप का भागी बनूँगा ॥ ३६ ॥

अमावस्यां महारक्षः श्राद्धं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत् ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुरः ॥ ३७ ॥
गत्वा रजस्वलां नारीं काममोहप्रपीडितः ।

षष्ठ्यष्टमी त्वमावस्यां उभेपक्षे चतुर्दशी ।
अस्नातानां गतिं यास्याम्यद्यहं नागमे पुनः ॥ ३८ ॥
स्वां च भार्यां परित्यज्य योऽभिगच्छति पुंश्चलीम् ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमेपुनः ॥ ३९ ॥
सख्युर्भार्यां विसृष्टां हि योऽभिगच्छति निर्घृणः ।
तेन पापेन लिप्येऽयं यद्यहं नागमं पुरः ॥ ४० ॥

हे महान् राक्षस ! अमावस्या तिथि को श्राद्ध करके जो स्त्री-गमन का पाप करता है, वह मुझे प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥ कामासक्त होकर जो मनुष्य षष्ठी, अष्टमी और अमावस्या तिथियों तथा दोनों पक्षों की चतुर्दशी को रजस्वला स्त्री के साथ गमन करता है और स्नान न करके जिस दुर्गति को प्राप्त करता है, वही मुझे प्राप्त होगी ॥ ३८ ॥ अपनी स्त्री को छोड़कर व्यभिचारिणी स्त्री के साथ गमन करने से जो पाप होता है उसका पात्र मैं बनूँगा ॥ ३९ ॥ जो निर्दयी व्यक्ति मित्र की परित्यक्ता पत्नी के साथ गमन करता है, मैं उसी पाप से लिप्त हो जाऊँगा, यदि पुनः लौटकर नहीं आता हूँ ॥ ४० ॥

गुरुपत्नीं राजपत्नीं योऽभिगच्छति मोहतः ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ४१ ॥
दास्यामीति वचः श्रुत्वा नैव दद्यात् कथंचन ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ४२ ॥
यस्तु कन्या सकृद्दत्वा त्वन्यस्मै तु प्रयच्छति ।
तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ४३ ॥
घातकानां च ये लोका ये लोका मित्रघातिनां ।
तेषां गतिं प्रपद्येयं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ४४ ॥

मोहान्ध होकर गुरु और राजा की पत्नी के साथ गमन करने के पाप का भागी बनूँगा यदि लौटकर नहीं आऊँगा । 'दूँगा' यह कहकर न देने से जो पाप होता है वह मुझे प्राप्त होगा ॥ ४१-४२ ॥

एक बार कन्यादान कर पुनः दूसरे को देने से जो पाप होता है, मैं यदि लौटकर नहीं आऊँगा तो उसी पाप का अधिकारी बनूँगा ॥ ४३ ॥

जो मित्र घाती हैं, ऐसे मनुष्यों की गति मुझे प्राप्त हो यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ ॥ ४४ ॥

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
तेषां गतिं प्रपद्येऽहं यद्यहं नागमं पुनः ॥ ४५ ॥

श्री वाराह उवाच –

सुधनस्य वचः श्रुत्वा सन्तुष्टो ब्रह्मराक्षसः ।
उवाच मधुरं वाक्यं गच्छ शीघ्रं नमोऽस्तुते ॥ ४६ ॥
ब्रह्मराक्षस मुक्तोऽसौ वणिजो विधिनिश्चयः ।
पुनर्नृत्यति देवाग्रे मम भक्त्या व्यवस्थितः ॥ ४७ ॥
अथ प्रभातसमये नृत्यचित्तोऽतिकोविदः[1] ।
नमोनारायणायेति उच्चार्य च पुनः-पुनः ॥ ४८ ॥

यदि पुनः लौटकर नहीं आऊँगा । ब्रह्म हत्या, सुरापान, चौरकर्म तथा व्रत का उल्लङ्घन करने से जो पाप होता है वह मुझे प्राप्त होगा ॥ ४५ ॥ वाराह भगवान् बोले – सुधन का कथन सुनकर ब्रह्मराक्षस अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और मधुरवाणी से कहने लगा – तुम शीघ्र ही जाओ, तुम्हें नमस्कार है । सुधन ब्रह्मराक्षस से मुक्त होकर मेरी भक्ति में तत्पर होकर पुनः मेरी प्रतिमा के समक्ष नृत्य करने लगा ॥ ४६-४७ ॥

प्रातःकाल ही नृत्यनिपुण सुधन 'नमो नारायण, नमो नारायण' का बार-बार उच्चारण करने लगा ॥ ४८ ॥

निवृत्ते जागरे सोऽध्यकालिंद्याः सलिले प्लुतः ।
दृष्ट्वा मां दिव्यरूपं तु गतोऽसौ मथुरां पुरीम् ॥ ४९ ॥
दृष्टश्चाग्रे त्वहं तेन पुरुषोदिव्यरूपधृक् ।
ससंदृष्टो मया देवि क्व भवान्प्रस्थितो द्रुतम् ॥ ५० ॥
पुरुषस्य वचः श्रुत्वा सुधनोवाक्यमब्रवीत् ।
अहं गच्छामि त्वरितो ब्रह्मराक्षस सन्निधौ ॥ ५१ ॥
निवारयामास तदा न गन्तव्यं त्वयानघ ।
जीवितो धर्ममाहात्म्यं मृते धर्मः कुतोयशः ॥ ५२ ॥

जागरण से निवृत्त होकर कालिन्दी के जल में स्नान करने के पश्चात् मेरे दिव्यरूप का दर्शन कर वह सुधन मथुरा पुरी गया ॥ ४९ ॥

---

१. नृत्यचित्तोऽति कोविदः अथवा नृत्यविक्षेप कोविदः ।

वह मेरे समक्ष दिव्य रूपधारी पुरुष के सदृश प्रस्तुत हुआ । हे देवि ! उसने पूछा, आप जल्दी-जल्दी कहाँ जा रहे हैं ? ॥ ५० ॥

पुरुष के वाक्य सुनकर सुधन बोला – मैं शीघ्र ही ब्रह्म राक्षस के समीप जाता हूँ ॥ ५१ ॥

हे निष्पाप !तुम वहाँ मत जाओ । जीवित रहने में ही धर्म का महत्व है । मृत्यु के पश्चात् धर्म और यश से कोई प्रयोजन नहीं है ।

पुरुषस्य वचः श्रुत्वा सवणिग्वाक्यमब्रतीत् ।
न चासत्यं वदिष्यामि यास्ये राक्षससन्निधौ ॥ ५३ ॥
ब्रह्मराक्षसमासाद्य सत्यधर्मपरायणः ।
उवाच मधुरं वाक्यं यत्र राक्षससन्निधौ ॥ ५४ ॥
आगतोऽस्मि महाभाग नर्तयित्वा यथासुखम् ।
विष्णवे लोकनाथाय मया दत्तं हि जागरम् ॥ ५५ ॥
इदं शरीरं मे रक्षो भक्षय यथेप्सितम् ।
यथान्यायविधानेन यथा वा तव रोचते ॥ ५६ ॥

पुरुष का कथन सुनकर वह वणिक् कहने लगा, मैं मिथ्या नहीं कहता राक्षस के पास अवश्य जाऊँगा ॥ ५३ ॥ ब्रह्म राक्षस के समीप पहुँचकर वह धर्मपरायण वणिक् मधुर वाणी में बोला, हे महाशय ! मैं आनन्दपूर्वक नृत्य करके आपके समक्ष आ गया हूँ । समस्त जगत् के स्वामी के मंदिर में मैंने जागरण किया ॥ ५४-५५ ॥

हे राक्षस ! मैं अपना शरीर आपको अर्पित करता हूँ, आप स्वेच्छापूर्वक भक्षण करें । नियमानुसार जो न्याय है, वैसा ही करें अथवा जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही कार्य करें ॥ ५६ ॥

नोक्तपूर्वं मयाऽसत्यं कदाचिदपि राक्षस ।
तेन सत्येन मां भुंक्ष्व ब्रह्मराक्षस दारुण ॥ ५७ ॥
वणिजस्य वचः श्रुत्वा ततोऽसौ ब्रह्मराक्षसः ।
उवाच मधुरं वाक्यं सुधनं तदनन्तरम् ॥ ५८ ॥
साधु तुष्टोऽस्मि भद्रं ते सत्यं धर्मं च पालितम् ।
वणिजस्यातिविज्ञस्य यस्य ते बुद्धिरीदृशी ॥ ५९ ॥
जागरस्य समस्तस्य मम पुण्यं प्रयच्छति ।
तस्य पुण्यप्रभावेन यथाहं मुक्तिमाप्नुयाम् ॥ ६० ॥

१- तत्र

हे राक्षस ! मैंने पहले कभी झूठ नहीं बोला । हे दारुण ब्रह्म राक्षस ! उस सत्य के आधार पर आप मेरा भक्षण करें ॥ ५७ ॥ वणिक् का कथन सुनकर वह ब्रह्म राक्षस सुधन से मधुर वाणी में कहने लगा ॥ ५८ ॥

हे सज्जन, भद्र पुरुष ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, क्योंकि तुमने सत्य और धर्म का पालन किया है । हे वणिक् तुम महाज्ञानी हो । इसलिए तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार की है ॥ ५९ ॥ तुम मुझे जागरण का समस्त पुण्य प्रदान कर दो जिसके प्रभाव से मैं राक्षसत्व से मुक्त हो जाऊँ ॥ ६० ॥

सुधन उवाच –

नाहं ददामि ने पुण्यं नृत्यस्य नरभोजन ।
अर्द्धं वाऽथ समस्तं वा प्रहरं चार्द्धमेव च ॥ ६१ ।
सुधनस्य वचः श्रुत्वा अब्रवीद् ब्रह्मराक्षसः ।
एकनृत्यस्य मे पुण्यं देहि त्वं वैश्यसत्तमः ॥ ६२ ॥

सुधन उवाच -

नाहं दास्यामि ते पुण्यं यथोक्तं च समाचर ।
केन त्वं कर्मदोषेण राक्षसत्वमुपागतः ॥ ६३ ॥
यत्ते गुह्यं महाभाग सर्वं तत्कथयस्व मे ।
सुधनस्य वचः श्रुत्वा विहसित्वा तु राक्षसः ॥ ६४ ॥

हे नरभक्षी ! मैं तुम्हें सम्पूर्ण, अर्द्ध अथवा आधे प्रहर के भी नृत्य का पुण्यफल नहीं दूँगा ॥ ६१ ॥

सुधन की बात सुनकर ब्रह्म राक्षस बोला – हे वैश्य श्रेष्ठ ! तुम मुझे एक नृत्य का ही पुण्यफल दे दो ॥ ६२ ॥

सुधन बोला – मैं तुम्हें कोई पुण्य नहीं दूँगा, मैंने जैसा कहा है वैसा करो । तुम किस कर्म दोष से राक्षसत्व को प्राप्त हुए हो ॥ ६३ ॥

हे महाशय ! जो भी रहस्य है वह सब मुझे बताओ । सुधन के वचन सुनकर राक्षस ने हँसकर कहा ॥ ६४ ॥

किं त्वं मां च न जानासि प्रतिवासी ह्यहं तव ।
अग्निदत्तस्तु वै नाम छंदोगी ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६५ ॥
इष्टिकान् तु हरं नित्यं परकीयांस्तु सर्वदा ।
हृतास्तु गृहकामेन राक्षसत्वमुपागतः ॥ ६६ ॥

मया त्वं हि यथाप्राप्त उपकारं कुरुष्व मे ।
एवं विश्रामपुण्यं मे देहि त्वं वैश्यसत्तम ॥ ६७ ॥
कृपया तु समायुक्तो स वणिक् वाक्यमब्रवीत् ।
दत्त्वा दानं तु विप्रस्य एकविक्षेपकस्य च ॥ ६८ ॥

क्या तुम मुझे नहीं पहचानते हो, मैं तुम्हारा पड़ोसी हूँ । मेरा नाम अग्निदत्त था । मैं सामवेदाध्यायी उत्तम ब्राह्मण था ॥ ६५ ॥

मैं परकीया, सुन्दरी स्त्रियों का हरण करता था । वासना-पूर्ति के लिए स्त्रियों के हरण करने के कारण ही मुझे राक्षसत्व प्राप्त हुआ ॥ ६६ ॥

मैंने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया है, मेरा उपकार करो । हे वैश्य श्रेष्ठ ! विश्रामतीर्थ-स्नान के पुण्य का फल मुझे प्रदान करो ॥ ६७ ॥ दयार्द्र होकर उस वणिक्ने कहा – एक रात्रि के नृत्य का पुण्य प्रदान किया ॥ ६८ ॥

एक नृत्यप्रभावेण राक्षसो मोक्षमाप्नुयात् ।

श्री वाराह उवाच –

सुधनस्य ततो देवि विश्वरूपं जनार्दनम् ॥
अग्रतस्तु स्थितं देवं दृष्ट्वासौ धरणीं गतः ॥ ६९ ॥
उवाच मधुरं वाक्यं देवदेवो जनार्दनः ।
चतुर्भुजो दिव्यतनुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ७० ॥
विमानवरमारुह्य ममलोकं व्रजस्व भो ।
इत्युक्त्वा माधवो देवि तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७१ ॥

एकनृत्य के प्रभाव से राक्षस को मुक्ति प्राप्ति हुई । श्री वाराह बोले– हे देवि ! इस सत्कर्म को करने के कारण विश्वरूप भगवान् जनार्दन ने प्रसन्न होकर उसको प्रत्यक्ष दर्शन दिये । वह भी देव को समक्ष देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । (साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया) ॥ ६९ ॥

देवाधिदेव, चतुर्भुज, दिव्य शरीरधारी, शङ्ख-चक्र-गदाधारी जनार्दन भगवान् मधुर वाणी में कहने लगे – हे सुधन ! श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर मेरे लोक में जाओ । हे देवि ! यह कहकर विष्णु वहीं पर अन्तर्धान हो गये ॥ ७०-७१ ॥

सुधनः सशरीरोऽपि सकुटुम्बो वसुन्धरे ।
विमानवरमारुह्य विष्णुलोकं ततोगतः ॥ ७२ ॥
एष तीर्थप्रभावो वै कथितस्तु वसुन्धरे ।

अक्रूराच्च परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ७३ ॥
तस्य तीर्थप्रभावेन सुधनो मुक्तिमाप्नुयात् ।
द्वादशीं शुक्लपक्षे तु कुमुदस्य तु या भवेत् ॥ ७४ ॥
तस्मिन्स्नातस्तु वसुधे राजसूयफलं लभेत् ।
कार्तिकीं समनुप्राप्य तत्तीर्थे तु वसुन्धरे ।
वृषोत्सर्ग[1] नरः कुर्वन् तारयेत्स्वकुलोद्भवान् ॥ ७५ ॥

हे वसुधे ! सुधन वणिक् ने अपने समस्त परिवार के साथ शरीर सहित श्रेष्ठ विमान में आरूढ़ होकर विष्णु लोक में गमन किया ॥ ७२ ॥

हे पृथ्वी ! इस तीर्थ का प्रभाव तुमने श्रवण किया । अक्रूर तीर्थ के समान कोई अन्य तीर्थ न हुआ है न होगा ॥ ७३ ॥

उस तीर्थ के प्रभाव से सुधन सर्वथा मुक्त हो गया । कार्तिक मास की शुक्ल पक्षीया द्वादशी को स्नान करने से राजसूययज्ञ के समान फल प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

वहाँ स्नान करने से राजसूययज्ञ का फल प्राप्त होता है । हे वसुन्धरे ! कार्तिकी पूर्णिमा को उस तीर्थ में स्नान करने तथा वृषोत्सर्ग करने से समस्त कुल का उद्धार होता है ॥ ७५ ॥

श्राद्धं यः कुरुते सुभ्रु कार्तिक्यां प्रयतो नरः ।
पितरस्तारितास्तेन सदैव प्रपितामहाः ॥ ७६ ॥

इत्यादि मथुरा माहात्म्ये अक्रूरतीर्थ प्रभावो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे मनोज्ञे ! कार्तिक मास में जो मनुष्य श्राद्ध करता है, उसके सभी पितृगणों का उद्धार हो जाता है ॥ ७६ ॥

अक्रूरतीर्थ प्रभाव नामक चतुर्थ अध्याय सम्पूर्ण

❀ ❀ ❀

---

१. **वृषोत्सर्ग** – पुराणानुसार एक धार्मिक कृत्य । इस कृत्य में अपने मृत पिता आदि के नाम पर साँड़ पर शंख, त्रिशूल या चक्र दागकर छोड़ दिया जाता है । अशौच समाप्त होने के दूसरे दिन यह कृत्य होता है । ऐसे साँड़ों से काम नहीं लिया जाता ।

पञ्चमोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

वत्सक्रीडनकं नाम तीर्थं क्षेत्रं परं मम ।
तत्र रक्तशिलाबद्धं रक्तचन्दनसन्निभम् ॥ १ ॥
स्नानमात्रेण तत्रैव वायुलोकं व्रजेन्नरः ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोके महीयते ॥ २ ॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
अस्ति भाण्डीरकं नाम तीर्थं परमुत्तमम् ॥ ३ ॥
शालै[1] स्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्चार्जुनैस्तथा ॥
इङ्गु[2]दै पीलुलैश्चैव करीरैरक्तपुष्पकैः ॥ ४ ॥

वत्सक्रीडनक नामक अत्यन्त पवित्र एवं मेरा प्रिय क्षेत्र है । इस तीर्थ में रक्तचन्दन के समान लाल शिलाएँ परस्पर संबद्ध हैं ॥ १ ॥

यहाँ स्नान करने मात्र से ही मनुष्य वायुलोक में गमन करता है । प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ २ ॥ हे वसुधे ! पुनः अन्य तीर्थ के सम्बन्ध में कहता हूँ वह सुनो । भाण्डीरक नामक उत्तम स्थल है, जहाँ शाल (साखू वृक्ष) ताड़, तमाल, अर्जुन, सागवान, इङ्गुदी, पीलु, रक्तपुष्पयुक्त करीर आदि वृक्षों का आधिक्य है ॥ ३-४ ॥

तस्मिन् भाण्डीरके स्नातो नियतो नियताशनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो इन्द्रलोकं स गच्छति ॥ ५ ॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं वृन्दावनं मम ॥ ६ ॥

१. **शाल** – यह वृक्ष हिमालय पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूरव प्रांत में पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में उत्पन्न होता है । इसके पत्ते चिकने, चमकीले, झण्डाकार ६ से १० इंच तक लम्बे ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं । बसंत में फूलता है, वर्षा में फलता है । इसके पत्ते और गोंद प्रायः औषधि के काम आते हैं ।

२. **इङ्गुदी** – हिङ्गोट या माल कंगनी का वृक्ष । ३- करीर - मरुस्थल में पैदा होने वाला काँटेदार वृक्ष जिसे ऊँट खाते हैं ।

तत्राहं क्रीडयिष्यामि गोपीगोपालकैः सह ।
सुरम्यं सुप्रतीतं च देवदानवदुर्लभम् ॥ ७ ॥
तत्र कुण्डे महाभागे बहुगुल्मलतावृते ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत एकरात्रोषितो नरः ॥ ८ ॥

मिताहारी, व्रती व्यक्ति भाण्डीरक तीर्थ में स्नान करके समस्त पापों से मुक्त होकर इन्द्रलोक में गमन करता है ॥ ५ ॥

यहाँ प्राणत्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । अब मेरे प्रिय क्षेत्र वृन्दावन के सम्बन्ध में श्रवण करो ॥ ६ ॥

वहाँ मैंने गोपी ग्वालों के साथ क्रीड़ा की । यह अत्यन्त सुन्दर, सुप्रतीत तथा देवता एवं दैत्यों के लिए दुर्लभ स्थल है ॥ ७ ॥

वहाँ पर अनेक झाड़ियों एवं लताओं से आवृत कुण्ड में स्नान तथा एक रात्रि व्रत करने का महत्त्व है ॥ ८ ॥

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च क्रीडमानः स मोदते ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि महापातकनाशनं ।
तस्मिन् वृन्दावने तीर्थे यत्र केशी निपातितः ॥ १० ॥
गङ्गाशतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः ।
काश्याः शतगुणं पुण्यं यत्र विश्रामितो हरिः ॥ ११ ॥
तस्माच्छतगुणं पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ।
तत्रापि च विशेषोऽस्ति केशीतीर्थे वसुन्धरे ॥ १२ ॥

इसके फलस्वरूप गन्धर्व तथा अप्सराओं के साथ क्रीड़ा का आनन्द प्राप्त होता है । यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ महान् पापों के विनाशक अन्य तीर्थ के सम्बन्ध में बताता हूँ । वृन्दावन में स्थित उस तीर्थ में मैंने केशी दैत्य का विनाश किया था । वहाँ स्नान करने से गंगा-स्नान सें सौगुना पुण्य प्राप्त होता है । जहाँ हरि ने विश्राम किया था, वहाँ काशी से भी सौगुना फल मिलता है । इस सम्बन्ध में और क्या कहूँ । हे वसुन्धरे ! उस केशीतीर्थ की अन्य विशेषता है ॥ १०-१२ ॥

तस्मिन् पिण्डप्रदानेन गयातुल्यफलं लभेत् ।
गयापिण्डप्रदानेन तत्फलं लभ्यते नरैः ॥ १३ ॥
स्नाने दाने तथा होमे अग्निष्टोम फलं लभेत् ।

सूर्यतीर्थे तु वसुधे द्वादशादित्यसंज्ञके ।
कालियो रमते तत्र कालिन्द्याः सलिले शुभे ॥ १४ ॥
आदित्यो वीक्षितो भूमे शीतार्तेन मया तदा ।
द्वादशास्तु तदादित्यास्तपन्ति मम सन्निधौ ॥ १५ ॥
कालिको दमितस्तत्र आदित्याः स्थापिता मया ।
वरं वृणुध्वं भद्रे वो यद्वो मनसि वर्तते ॥ १६ ॥

यहाँ पितृगणों को पिण्डदान करने से गया में पिण्डदान करने के समान फल प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

स्नान, दान, जप होमादि करने से अग्निष्टोम यज्ञ के तुल्य फल प्राप्त होता है । द्वादशादित्य नामक सूर्यतीर्थ में कालिन्दी (यमुना) प्रवाहित है, जहाँ कालिय नाग का निवास था ॥ १४ ॥ शीत से आक्रान्त होने पर मैंने द्वादशादित्य के दर्शन किये, जो मेरे सम्मुख अपने तेज से मुझे तप्त (तपाते) करते हैं ॥ १५ ॥

कालिय नाग का दमन करके मैंने द्वादश आदित्यों की स्थापना की तथा उनको वर माँगने के लिए कहा ॥ १६ ॥

आदित्या ऊचुः –

वरं ददासि चेद्देव वरार्हो यदि वा वयम् ।
अस्मिन्तीर्थे वरे स्थानमस्माकं संप्रदीयताम् ॥ १७ ॥
आदित्यानां वचः श्रुत्वा ततोऽहं वाक्यमब्रुवन् ।
द्वादशादित्यसंज्ञं हि स्थानमेतद्भविष्यति ॥ १८ ॥
चैत्रमासे नरः षष्ठ्यां शुक्लपक्षे वसुन्धरे ।
तस्मिन्स्नातो नरो देवि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १९ ॥
आदित्येऽहनि संक्रान्तौ अस्मिन्तीर्थे वसुन्धरे ।
मनसाभीप्सितं कामं संप्राप्नोति न संशयः ॥ २० ॥

आदित्य बोले – हे देव !यदि हम वर माँगने के योग्य हैं और आप देना ही चाहते हैं, तो यह हमारा स्थान आप हमको प्रदान कीजिए अर्थात् यह हमारे नाम से विख्यात तीर्थस्थल हो, ऐसा वर प्रदान कीजिए ॥ १७ ॥

द्वादशादित्यों के वचन सुनकर मैंने कहा – यह स्थल निश्चय ही द्वादशादित्य के नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ १८ ॥ हे पृथ्वी ! चैत्र मास में शुक्ल

पक्षीया षष्ठी को यहाँ स्नान करने से मनुष्य के सम्पूर्ण मनोरथ सफल होते हैं ॥ १९ ॥ रविवारीय संक्रान्ति या रविवार तथा संक्रान्ति को इस तीर्थ में मनोवाञ्छित कामनाएं पूर्ण होती हैं ॥ २० ॥

सूर्यतीर्थे नरः स्नातो दृष्ट्वादित्यं वसुन्धरे ।
आदित्यभुवनं प्राप्य कृतकृत्यः स मोदते ॥ २१ ॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान्ममलोकं स गच्छति ।
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ॥ २२ ॥
क्षेत्रं प्रस्कन्दनं नाम सर्वपापहरं शुभम् ।
तस्मिन्स्नातश्च मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३ ॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान्ममलोकं स गच्छति ।
उत्तरे हरिदेवस्य दक्षिणे कालियस्य तु ।
अनयोर्देवयोर्मध्ये ये मृतास्तेऽपुनर्भवा ॥ २४ ॥

इत्यादि मथुरा माहात्म्ये मथुरा प्रादुर्भावोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूर्यतीर्थ में स्नान करके आदित्यदर्शन करने से मनुष्य कृतकृत्य होकर सूर्यलोक में गमन करता है ॥ २१ ॥

यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । हे पृथ्वी, अब अन्य तीर्थों का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥ २२ ॥

प्रस्कन्दन नामक क्षेत्र मङ्गलमय एवं पाप-नाशक तीर्थ है । यहाँ स्नान करने से मनुष्य के समस्त पाप प्रक्षालित होते हैं ॥ २३ ॥ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । उत्तर में श्रीकृष्ण तथा दक्षिण में कालियनाग का निवास है । इन दोनों देवस्थलों के मध्य प्राण त्यागने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २४ ॥ यह स्थान वृन्दावन में कालीदह के समीप स्थित है ।

मथुरा प्रादुर्भाव नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण ।। ५ ।।

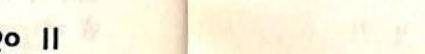

षष्ठोऽध्यायः

श्रीवाराह उवाच —

यमुनापारमुल्लंघ्य तत्रैव च महामुने ।
यमुनार्जुनकं तीर्थं कुण्डं तत्र च विद्यते ॥ १ ॥
पर्य्यस्तं यत्र शकटं भिन्नभाण्डकुटीघटम् ।
तत्र स्नानोपवासाभ्यामनन्तफलमश्नुते ॥ २ ॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य ज्येष्ठमासे वसुन्धरे ।
तत्र स्नानेन दानेन महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥
निखिलतोपरिक्रामन् वसंत्यानिबंधनात् ।
गोविन्दे जागरं कृत्वा कृतकृत्यो य भविष्यति ॥ ४ ॥

वाराह भगवान् बोले — यमुना के उसपार यमलार्जुनक तीर्थ तथा कुण्ड भी विद्यमान है ॥ १ ॥ यहाँ श्रीकृष्ण ने पाद प्रहार के द्वारा शकट को तोड़ा था, जिससे भाण्ड इधर-उधर बिखर गये थे । इस स्थल पर स्नान-व्रत करने से अनन्तफल प्राप्त होता है ॥ २ ॥

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्षीया द्वादशी को दान तथा स्नानादि करने से पापों का नाश होता है ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण स्थलों की परिक्रमा करते हुए स्वतंत्र रूप से निवास करके तथा गोविन्द के मंदिर में जागरण करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ ४ ॥

तत्रैव तु महातीर्थं वने बहुलसंज्ञके ।
तत्र स्नातो नरो देवि रुद्रलोके महीयते ॥ ५ ॥
चैत्रमासे चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे वसुन्धरे ।
तत्र स्नातो नरो याति मम लोकं न संशयः ॥ ६ ॥
अस्ति भाण्डह्रदं नाम परेपारे सुदुर्लभम् ।
दृश्यन्तेऽरहस्तत्र आदित्याः शुभकारिणः ॥ ७ ॥

तत्र चार्कस्थले कुण्डे स्नानं य कुरुते नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं व्रजेच्च सः ॥ ८ ॥

बहुल नामक वन में एक महान् तीर्थ है, यहाँ स्नान करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

चैत्रमास की शुक्ल पक्षीया चतुर्दशी को यहाँ स्नान करने से मेरा लोक निस्संदेह प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यमुना के तट पर भाण्डह्रद नामक स्थल है । यहाँ नित्यप्रति मङ्गलकारी सूर्य के दर्शन होते हैं ॥ ७ ॥

वहीं पर स्थित अर्कस्थल कुण्ड में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक में गमन करता है ॥ ८ ॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
अर्कस्थलसमीपे तु कूपं तु विमलोदकम् ॥ ९ ॥
सप्तसामुद्रिकं नाम देवानामपिदुर्लभम् ।
तत्र स्नानेन वसुधे स्वच्छंदेन अनालसः ॥ १० ॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
तत्र वीरस्थलं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम ॥ ११ ॥
प्रसन्नसलिलं चैव पद्मोत्पलविभूषितम् ।
यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोषितो नरः ॥ १२ ॥

यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । अर्कस्थल के समीप स्वच्छ जलयुक्त कूप है ॥ ९ ॥

यह सप्तसामुद्रिक कूप के नाम से प्रख्यात् है, देवताओं के लिए दुर्लभ है । इस तीर्थ में स्नान करने वाले इष्ट गति को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । इसके समीप ही वीरस्थल नामक मेरा गुप्त क्षेत्र है ॥ ११ ॥ इस सरोवर में स्वच्छ जल तथा लाल एवं नीले कमल सुशोभित हैं । जो यहाँ एक रात्रि निवास करके स्नान करता है ॥ १२ ॥

स मत्प्रसादात्सुश्रोणि वीरलोके महीयते ।
अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ १३ ॥
कुशस्थलं च तत्रैव पुण्यं पापहरं शुभम् ।
तत्र स्नातो नरो देवि ब्रह्मलोकं व्रजेन्नरः ॥ १४ ॥

तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
तत्र पुष्पस्थलं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५ ॥
तत्र स्नातो नरो देवि पुण्यलोकं व्रजेन्नरः ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ १६ ॥

हे सुन्दर कटिवाली ! उसे मेरी कृपा से वीर लोक का सम्मान प्राप्त होता है । यहाँ प्राण त्यागने से नर मेरे लोक को जाता है ॥ १३ ॥

वहीं पर पापापहारक पुण्यमय शुभ तीर्थ है, जहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में गमन करता है ॥ १४ ॥

यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । तीनों लोकों में प्रख्यात पुष्पस्थल नामक तीर्थ है ॥ १५ ॥

यहाँ स्नान करने से मनुष्य पुण्यमय लोक को प्राप्त करता है । प्राण त्याग होने पर मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

महीस्थलं च तत्रैव शिवक्षेत्रमनुत्तमम् ।
तत्र स्नातो हि मनुजो शिवलोके महीयते ॥ १७ ॥
एते पञ्चस्थला ख्याता महापातकनाशनाः ।
एषु स्नातस्तु वसुधे ब्रह्मणा सह मोदते ॥ १८ ॥
तत्र गोपीश्वरो नाम महापातकनाशनः ।
कृष्णस्य रमणार्थं हि सहस्राणि च षोडश ॥ १६ ॥
गोप्यो रूपाणि चक्रुश्च तत्राक्रीडश्च केशव ।
यदा बालेन कृष्णेन भग्नार्जुनयुगं तथा ॥ २० ॥

अर्कस्थल, सप्तसामुद्रिक, वीरस्थल, कुशस्थल तथा पुष्पस्थल नामक पाँच तीर्थ महापापों के विनाशक हैं । यहाँ स्नान करने से मनुष्य ब्रह्म-लोक में सम्मानित होता है ॥ १७ ॥

वहीं पर उत्तम शिव का मंदिर महीस्थल है । यहाँ स्नान करने से मनुष्य शिवलोक में सम्मानित होता है ॥ १८ ॥

इसी के समीप पापापहारक गोपीश्वर महादेव हैं, जहाँ श्री कृष्ण के साथ रासक्रीड़ा हेतु (१६०००) सोलह हजार गोपियाँ सुन्दर रूप धारण करके आईं । वहाँ केशव (श्रीकृष्ण) ने रासक्रीड़ा की और बाल्यकाल में श्रीकृष्ण ने दो अर्जुन वृक्षों (यमलार्जुन) को तोड़ा ॥ १६-२० ॥

शकटं च तदा भिन्नं घटभाण्डकुटीघटम् ।
ताभिस्तत्रैव गोविन्दं विक्रीडितं यदृच्छया ॥ २१ ॥
परिष्वक्तं हि कृष्णेन व्याजेनैवं सुगोपितम् ।
मातलिस्तत्र चागत्य देवैरुक्तं यथोचितम् ॥ २२ ॥
गोपीवेशधरं देवमभिषिक्तं चकार ह ।
आनीय सप्तकलशान् रत्नौषधि परिप्लुतान् ॥ २३ ॥
गोपीमङ्गलपाठेन स्नापितो हेमकुण्डलः ।
गोप्यो गायन्ति नृत्यन्ति कृष्णकृष्णेति चाब्रुवन् ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में घट आदि मिट्टी के बर्तनों सहित शकट (गाड़ी) को तोड़ा और वहाँ पर स्वेच्छापूर्वक गौ समूह के साथ क्रीड़ा की ॥ २१ ॥

गोपियों के साथ यथेष्ट क्रीड़ा करते हुए कृष्ण ने मातलि का आलिङ्गन किया । देवताओं ने मातलि के कथनानुसार गोपवेषधारी कृष्ण का अभिषेक किया । रत्न तथा औषधियुक्त जल से परिपूर्ण सात कलशों से हेमकुण्डलधारी कृष्ण को गोपियों ने स्नान करवाया । उस समय गोपियाँ-, हे कृष्ण ! अहो कृष्ण ! कह-कहकर उनके समक्ष नृत्य और गान करने लगीं ॥ २२-२४ ॥

तत्र गोपीश्वरं देवं मातलिः स्थाप्यपूजितम् ।
कूपं च स्थापयामास माङ्गल्यैः कलशैः शुभैः ॥ २५ ॥
सप्तसामुद्रिकं नाम कूपं च विमलोदकम् ।
देवस्याग्रे तु वसुधे गोपीशस्य महात्मनः ।
पितरश्चाभिनन्दन्ति पानीयं पिण्डमेव च ॥ २६ ॥
सप्तसामुद्रिके कूपे यः श्राद्धं सम्प्रदास्यति ।
पितरस्तारितास्तेन कुलानां सप्तसप्ततिः ॥ २७ ॥
सोमवारे त्वमावस्यां पिण्डदानं करोति यः ।
गयापिण्डप्रदानं च कृतं नास्त्यत्र संशयः ॥ २८ ॥

इन्द्रसारथि मातलि ने गोपीश्वर भगवान् की स्थापना करके अर्चन-पूजन किया । मंगलमय कल्याणकारी कलशों के द्वारा स्वच्छ जल युक्त सप्तसामुद्रिक नामक कूप की स्थापना की ॥ २५ ॥ गोपीश्वर देव के समक्ष जलदान और पिण्डदान करने से पितृगण प्रसन्न होते हैं । इस कूप पर जो मनुष्य श्राद्धक्रिया

सम्पन्न करता है, उसके सतहत्तर (७७) कुलों का उद्धार हो जाता है ॥२६-२७॥ सोमवती अमावस्या को जो व्यक्ति यहाँ पिण्डदान करता है, उसका फल गया में किये गये पिण्डदान के तुल्य है, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ २८ ॥

गोविन्दस्य च देवस्य तथा गोपीश्वरस्य च ।
मध्ये तु मरणं यस्य शक्रस्यैति सलोकताम् ॥ २९ ॥
तथा बहुला रुद्रस्य गोविन्दस्यैव मध्यतः ।
तद्वद्ब्रह्माणमीशस्य गोपीशस्यैव मध्यतः ॥ ३० ॥
एतेषु स्नानदानेन पिण्डपातेन भामिनि ।
नरस्तारयते पुंसां दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ३१ ॥
एवं स्नातो नरो देवि देवैश्च सह मोदते ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ ३२ ॥

गोविन्द देव तथा गोपीश्वर देव के स्थलों के मध्य मृत्यु होने पर इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥

इसी प्रकार रुद्र के बहुल नामक स्थल पर तथा गोपीश्वर तीर्थ में ब्रह्मलोक प्राप्ति की इच्छा से स्नान दान एवं पिण्ड प्रदान करने से मनुष्य के पूर्व तथा पश्चात् के दस-दस पितृगणों का उद्धार हो जाता है ॥ ३०-३१ ॥

हे देवि ! इस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्ग में देवताओं के साथ आनन्दित होता है। यहाँ मरने पर मेरे धाम को प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

वत्सपुत्रं महापुण्यं तीर्थं परमुत्तमम् ।
मथुरादक्षिणे पार्श्वे वत्सरागविभूषितम् ॥ ३३ ॥
तत्र स्नानेन दानेन वांछितं फलमाप्नुयात् ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ ३४ ॥
मथुरादक्षिणे पार्श्वे क्षेत्रं फाल्गुनकं तथा ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वीरलोके स मोदते ॥३५॥
तत्र फाल्गुनके चैव तीर्थे परमदुर्लभे ।
वृषभाञ्जनकं नामक्षेत्रं दुर्लभं महत् ॥ ३६ ॥

महान् पुण्यशाली वत्सराग से विभूषित अत्यन्त उत्तम वत्सपुत्र नामक तीर्थ है । यह मथुरा के दक्षिण में स्थित है ॥ ३३ ॥

यहाँ स्नान एवं दान करने से अभिलषित फल प्राप्त होता है तथा प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

मथुरा के दक्षिण में ही फाल्गुनक नामक तीर्थ है, यहाँ स्नान तथा जल का आचमन करने से वीरलोक का आनन्द प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

फाल्गुनक तीर्थ के समीप वृषभाञ्जनक नामक एक दुर्लभ तीर्थ है ॥ ३६ ॥

तत्राभिषेकं यः कुर्यात्स देवै सह मोदते ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोके महीयते ॥ ३७ ॥
अस्ति तालवनं नाम धेनुकासुररक्षितम् ।
मथुरापश्चिमे पार्श्वे अदूरार्द्धयोजनम् ॥ ३८ ॥
तत्र कुण्डं स्वच्छजलं नीलोत्पलविभूषितम् ।
तत्र स्नानेन दानेन वांछितं फलमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥
अस्ति संवीतकं (संपीठकं) नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम ।
तत्र कुंडं विशालाक्षि प्रसन्नसलिलं शुभम् ॥ ४० ॥

वहाँ अभिषेक (स्नान) करने से मनुष्य देवताओं का सायुज्य प्राप्त करता है । प्राणत्याग से मेरे लोक में सम्मानित होता है ॥ ३७ ॥

मथुरा के पश्चिम में लगभग अर्द्ध योजन (४ मील दूर) धेनुकासुर के द्वारा रक्षित तालवन नामक एक तीर्थ है ॥ ३८ ॥

वहाँ स्वच्छ जलयुक्त नीले तथा लाल कमलों से युक्त एक कुण्ड (सरोवर) है । वहाँ स्नान, दान करने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥

इसी क्षेत्र में संवीतक नामक मेरा गुप्त क्षेत्र है । हे विशाल नेत्रों वाली ! वहीं पर स्वच्छ जलयुक्त शुभ सुन्दर सरोवर है ॥ ४० ॥

तत्र स्नानं तु यः कुर्यादेकरात्रोषितो नरः ।
अग्निष्टोमफलं चैव लभते नात्र संशयः ॥ ४१ ॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।
मथुरापश्चिमे पार्श्वे अदूरादर्द्धयोजने ॥ ४२ ॥
कुंडं च वर्तते तत्र रविमंडलमण्डितम् ।
मया तत्र तपस्तप्तं पुत्रार्थं तु वसुन्धरे ॥ ४३ ॥
देवकीगर्भसंभूतो वसुदेवगृहे शुभे ।
तत्र पुण्येन हि मया रविराराधितस्तदा ॥ ४४ ॥

इस क्षेत्र में एक रात्रि निवास करने से अग्निष्टोमयज्ञ के फल के तुल्य फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ४१ ॥

यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । मथुरा के पश्चिम में आधा योजन (चार मील) दूर सूर्य-मंडल से शोभित सरोवर है, मैंने वहाँ पुत्र की कामना से तपस्या की थी ॥ ४२-४३ ॥

वसुदेव के घर में देवकी के गर्भ से मैं उत्पन्न हुआ था । मैंने पुण्य के प्रभाव से सूर्य की आराधना की थी ॥ ४४ ॥

लब्धः प्राज्ञोमया पुत्रो रूपवान्स्वगुणान्वितः ।
तत्रैव तु मयादृष्टः पद्महस्तो दिवाकरः ॥ ४५ ॥
मासि भाद्रपदे देवि तिग्मतेजो विभावसुः ।
सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य रविस्तिष्ठति सर्वदा ॥ ४६ ॥
तस्मिन्नहनि यः कुर्यात्कुंडे स्नानं समाहितः ।
न तस्य दुर्लभं लोके सर्वदाता दिवाकरः ॥ ४७ ॥
आदित्येऽहनि सम्प्राप्ते सप्तम्यां च वसुंधरे ।
नरो वाप्यथवा नारी प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥ ४८ ॥

उसी पुण्य के प्रभाव से शुभ लक्षणान्वित, रूपवान् और बुद्धिमान् पुत्र को प्राप्त किया । इसी तीर्थ में हाथ में कमल धारण करने वाले भगवान् भास्कर के दर्शन किये ॥ ४५ ॥ हे देवि ! तीक्ष्ण किरणों से युक्त, तीव्र तेज से जगत् को प्रकाशित करने वाले सूर्यनारायण भाद्रपद मास की कृष्ण पक्षीया सप्तमी को यहाँ निवास करते हैं ॥ ४६ ॥

उस दिन जो व्यक्ति ध्यानावस्थित होकर कुण्ड में स्नान करता है, उसके लिए कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं है । सूर्यदेव समस्त अभीष्ट वस्तुएं प्रदान करते हैं ॥ ४७ ॥

हे वसुधे ! रविवासरीया सप्तमी को स्त्री अथवा पुरुष जो भी स्नान करते हैं, उनको सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥

तत्रैव च तपस्तप्तं राज्ञाशान्तनुना पुरा ।
आदित्यं तु पुरः स्थाप्य प्राप्तो भीष्मो महाबलः ॥ ४९ ॥
शान्तनुः प्राप्य सत्पुत्रं गतोऽसौ हस्तिनापुरम् ।
तत्र स्नानेन दानेन वांछितं फलमाप्नुयात् ॥ ५० ॥
इत्यादि वाराहपुराणे मथुरामाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

प्राचीनकाल में राजा शान्तनु ने सूर्यप्रतिमा की स्थापना करके तप किया था, जिसके प्रभाव से उन्हें महाबलशाली पुत्र भीष्म की प्राप्ति हुई । उस उत्तमपुत्र को पाकर शान्तनु हस्तिनापुर गये । वहाँ स्नान एवं दान से इच्छित फल की प्राप्ति होती है ॥ ४६-५० ॥

यमुलार्जुनवक्र तीर्थ-प्रशंसा नामक षष्ठ अध्याय सम्पूर्ण ।

सप्तमोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

विंशतिर्योजनानां च माथुरं मम मण्डलम् ।
यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १ ॥
वर्षाकाले तु स्थातव्यं यत्र स्थानं तु हर्षदम् ।
पुण्यात्पुण्यतमं[1] चैव माथुरे मम मण्डले ॥ २ ॥
सप्तद्वीपेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
मथुरायां गमिष्यन्ति प्रसुप्ते च सदामयि ॥ ३ ॥
सुप्तोत्थिते तु वसुधे दृष्ट्वा मे मुखपंकजम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव मुञ्चति ॥ ४ ॥

श्री वाराह भगवान् बोले –

२० योजन पर्यन्त मेरा मथुरा-मण्डल है । वहाँ के (तीर्थ), घाटों पर स्नान करने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

वर्षाकाल में मथुरा-मण्डल में निवास अत्यन्त हर्षदायक तथा पुण्यमय है ॥ २ ॥

सात महाद्वीपों में जो भी पुण्यास्पद तीर्थ हैं, सभी विष्णु के शयनकाल में मथुरा में गमन करते हैं ॥ ३ ॥ देवोत्थान (विष्णु जागरण) के समय विष्णु के दर्शन करने से सात जन्मों में किये गये पापों का तत्काल विनाश होता है ॥ ४ ॥

मथुरावासिनो लोकाः सर्वे ते मुक्तिभाजनाः ।
मथुरां समनुप्राप्य दृष्ट्वा देवं तु केशवम् ॥ ५ ॥
स्नात्वा पुनस्तु कालिंद्यां यो मां पश्यति सर्वदा ।
स तत्फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ६ ॥
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
प्रदक्षिणीकृता येन मथुरायां तु केशवः ॥ ७ ॥

---

१. पुण्यात् पुण्यतरं ।

घृतपूर्णेन पात्रेण समग्रेण च वाससा ।
केशवस्याग्रतो दत्त्वा दीपकं तु वसुन्धरे ॥ ८ ॥

मथुरा में निवास करने वाले मनुष्य मुक्ति के अधिकारी हैं । मथुरा में जाकर केशवदेव भगवान् के दर्शन करने से कालिन्दी में स्नान करके जो नर मेरे दर्शन करते हैं, उन्हें राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥ ५-६ ॥

जो व्यक्ति मथुरा में केशव भगवान् की प्रदक्षिणा कर लेता है, हे वसुधे ! वह सात द्वीपों की प्रदक्षिणा के फल को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

समस्त वस्त्रों को धारण करके जो व्यक्ति घृतपूर्ण पात्र से केशव भगवान् को दीपक अर्पण करता है ॥ ८ ॥

पंचयोजन विस्तारमायामं पंचविस्तरम् ।
दीपमालासमाकीर्णं विमानं लभते नरः ॥ ६ ॥
सर्वकामसमृद्धं तदप्सरोगणसेवितम् ।
रत्नमालासमाकीर्णं विमानंसर्वकामदम् ॥ १० ॥
समारोहति वै नित्यं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
ये देवा ये च गन्धर्वाः सिद्धाश्चारणपन्नगाः ॥ ११ ॥
तं स्पृहन्ति सदा देवि पुण्यमस्ति कृतं भुवि ।
यदि कालान्तरे पुण्यं हीयतेऽस्य पुराकृतम् ॥ १२ ॥

वह पाँच योजन के विस्तार से युक्त दीपों की पंक्ति से व्याप्त विमान को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

सभी कामनाओं से परिपूर्ण, अप्सराओं के द्वारा सेवित रत्नपंक्ति से व्याप्त सभी कामनाओं के प्रदाता, ज्योति मण्डल से शोभित विमान पर नित्य आरूढ़ होता है । जिसने पृथ्वी पर पुण्य कार्य किये हैं, देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग उसकी सदैव प्रशंसा करते हैं । यदि उस मनुष्य के पहले किये हुए पुण्य कुछ समय के बाद क्षीण हो जाते हैं ॥ १०-१२ ॥

सतां पुण्यगृहे देवि जायते मानवो हि सः ।

धरण्युवाच —

क्षेत्रं हि रक्षते देवः कस्त्विदं पापनाशनम् ॥ १३ ॥
यक्षरक्षपिशाचैश्च भूतप्रेतविनायकैः ।
एवमादिभिराजुष्टं क्षेत्रं न फलदं भवेत् ॥ १४ ॥

श्री वाराह उवाच —

मत्क्षेत्रं ते न पश्यन्ति मत्प्रभावात् कदाचन ।
न विकुर्वन्ति ते दृष्ट्वा मत्पराणां हि देहिनाम् ॥ १५ ॥
रक्षार्थं हि मयादत्ता दिक्पालास्तु वसुंधरे ।
लोकपालास्तु चत्वारस्तीर्थं रक्षन्ति ये सदा ॥ १६ ॥

वह मनुष्य सज्जनों के पवित्र घर में जन्म लेता है । पृथ्वी बोली — हे देव ! यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत-प्रेत विनायक आदि जहाँ निवास करते हैं, वह स्थान फलदायी नहीं होता । अतः उस पापनाशक स्थान की रक्षा कौन से देवता करते हैं ॥ १३-१४ ॥

श्री वाराहदेव ने कहा — मेरे प्रभाव से विघ्नकारी शक्तियाँ मेरे इस क्षेत्र पर या भक्तों पर कुदृष्टि डालकर बाधित नहीं कर पातीं ॥ १५ ॥ हे पृथ्वी देवी ! मैंने इसकी रक्षा के लिए दिक्पालों और चार लोकपालों को नियुक्त किया है ॥ १६ ॥

पूर्वां रक्षति चेन्द्रस्तु यमो रक्षति दक्षिणाम् ।
पश्चिमां रक्षते नित्यं वरुणः पाशधृक् स्वयम् ॥ १७ ॥
उत्तरां तु कुबेरश्च महाबलपराक्रमः ।
मध्यं तु रक्षते नित्यं स्थितो देव उमापतिः ॥ १८ ॥
मथुरायां गृहं यस्तु प्रासादं पुरवासिनाम् ।
कारयित्वा तु मनुजो जायते स चतुर्भुजः ॥ १९ ॥
मथुरायां महाभागे कुण्डे तु विमलोदके ।
गम्भीरे तु सदा देवि स तिष्ठेच्च चतुर्भुजः ॥ २० ॥

पूर्व दिशा की रक्षा इन्द्र और दक्षिण की यम करते हैं । पाशधारी वरुण स्वयं पश्चिम दिशा की रक्षा में तत्पर हैं । महाबलशाली और पराक्रमशील कुबेर उत्तर की रक्षा करते हैं । नित्य स्थित रहने वाले शिव मध्यभाग की रक्षा करते हैं । जो मनुष्य मथुरा में पुरवासियों के लिए घर और अट्टालिकाएं बनवाता है, वह चार भुजाधारी विष्णु का रूप हो जाता है अर्थात् विष्णु सायुज्य को प्राप्त करता है ॥ १७-२० ॥

तत्राभिषेकं कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः ।
मोदते सर्व लोकेषु सर्वपापविवर्जितः ॥ २१ ॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ।

वैष्णवं लोकमासाद्य क्रीडते सुरराडिव ॥ २२ ॥
तत्रैव तु महाश्चर्यं कथ्यमानं मया शृणु ।
यदुच्यते वै सुश्रोणि कुंडे तु विमलोदके ॥ २३ ॥
हेमन्ते च भवेदुष्मं तेजसा मम शोभने ।
ग्रीष्मे भवति सुश्रोणि तुषारसदृशोपमम् ॥ २४ ॥

वहाँ एक रात्रि निवास करके स्नान करने से समस्त पापों से मुक्त होकर मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

यहाँ प्राणत्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है । वैष्णव लोक में पहुँच कर व्यक्ति सुरराज इन्द्र के समान क्रीड़ा का आनन्द प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

वहाँ का एक महान् आश्चर्य है, उसे सुनो । विमलोदक कुण्ड में स्थित जल हेमन्त ऋतु में मेरे तेज के कारण गर्म और ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त शीतल हो जाता है ॥ २३-२४ ॥

न वर्द्धते च वर्षासु ग्रीष्मे चापि न हीयते ।
एतच्च महदाश्चर्यं तस्मिन्कुंडे परं मम ॥ २५ ॥
पदे पदे तीर्थफलं मथुरायां च वसुंधरे ।
यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २६ ॥
वर्षासु स्थलतीर्थेषु स्नातव्यं तु प्रयत्नतः ।
ह्रदेषु देवखातेषु गर्तसु च नदीषु च ॥ २७ ॥
प्रवाहेषु सर्वेषु नदीनां सङ्गमेषु च ।
वर्षासु सर्वतः स्नायाद्यदीच्छेत् परमां गतिं ॥ २८ ॥

मेरे इस कुण्ड का जल न वर्षाकाल में बढ़ता है, न ग्रीष्म ऋतु में अल्प होता है । यह अत्यन्त आश्चर्यमय है ॥ २५ ॥

हे वसुन्धरे ! मथुरा का प्रति पग तीर्थ के पुण्यफल को प्रदान करता है । यहाँ के प्रत्येक तीर्थ में स्नान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २६ ॥

वर्षाकाल में कूप, तालाब, नैसर्गिक सरोवर, पोखरों और नदियों में प्रयत्नपूर्वक स्नान करना चाहिए । यदि परमगति प्राप्ति की इच्छा है तो बहते हुए जल में, नदियों के सङ्गम स्थलों में स्नान करना चाहिए । इससे परम गति प्राप्त होती है ॥ २७-२८ ॥

अस्ति क्षेत्रं परं गुह्यं मुचुकुंदं च नामतः ।
मुचुकुंदः स्वपित्यत्र दानवासुरपातनः ॥ २९ ॥
तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥ ३० ॥
इह जन्मकृतं पापं अन्य जन्म कृतं च यत् ।
तत्सर्वं नश्यते शीघ्रं कीर्तनात् केशवस्य तु ॥ ३१ ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने ।
नरके पच्यमानस्य गतिर्देवि जनार्दनः ॥ ३२ ॥

मुचुकुन्द नामक दिव्य तथा पवित्र तीर्थ है । यहाँ देवासुर संग्राम के पश्चात् राजा मुचुकुन्द ने शयन किया था ॥ २९ ॥

इस कुंड में स्नान करने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है । यहाँ प्राण त्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

इस जन्म में तथा पूर्व जन्म में किये गये पाप केशव भगवान् का गुणगानात्मक कीर्तन करने से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

जिसकी श्रीकृष्ण में भक्ति, आसक्ति है उसका मंत्र पूजा, पाठ से क्या प्रयोजन । दुःख में लिप्त मनुष्य भगवान् जनार्दन की शरण जाते हैं, वही एकमात्र आश्रय स्थान है ॥ ३२ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणं देवं मथुरायां तु केशवम् ।
न जायते मर्त्यलोके जातो वा नृपतिर्भवेत् ॥ ३३ ॥
मासे वै कुमुदे देवि यः करोति प्रदक्षिणम् ।
देवेषु ममरूपेषु सोऽनन्तफलमश्नुते ॥ ३४ ॥
कृत्वा प्रदक्षिणं सम्यग् विश्रामं कुरुते तु यः ।
नारायणसमीपे तु सोऽनन्तफलमश्नुते ॥ ३५ ॥
सुप्तोत्थितं हरिं दृष्ट्वा मथुरायां वसुन्धरे ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्जायते स चतुर्भुजः ॥ ३६ ॥

मथुरा में केशवदेव की परिक्रमा करके मर्त्यलोक में जन्म नहीं लेना पड़ता, यदि जन्म लेता भी है, तो नृप (राजा) के रूप में ॥ ३३ ॥

हे देवि ! कुमुद (कार्तिक) मास में प्रदक्षिणा करने से अनन्त फल प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

भली-भाँति परिक्रमा करके जो गतश्रम नारायण के समीप विश्राम करता है, वह अनन्त फल प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥

हे वसुन्धरे ! मथुरा में देवोत्थान एकादशी को दर्शन करके व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ३६ ॥

कुमुदस्य तु मासस्य मथुरायां वसुन्धरे ।
नवम्यां प्रदक्षिणं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३७ ॥
ब्रह्मध्नश्च सुरापश्च गोघ्नो भग्नव्रतस्तथा ।
मथुराप्रदक्षिणं कृत्वा पूतो भवति मानवः ॥ ३८ ॥
अष्टम्यां प्राप्य मथुरां दन्तधावनपूर्वकम् ॥
ब्रह्मचर्येण तां रात्रिं कृतसंकल्पमानसः ॥ ३९ ॥
धौतवस्त्रस्तु सुस्नातो मौनव्रतपरायणः ।
प्रदक्षिणं कुर्वीत सर्वपातकशुद्धये ॥ ४० ॥

कार्तिक मासीया नवमी को मथुरा की परिक्रमा करके समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है ॥ ३७ ॥

ब्रह्म-हत्यारा, सुरापायी, गो-वध करने वाला, व्रत-भङ्ग करने वाला मथुरा की परिक्रमा करके पवित्र हो जाता है ॥ ३८ ॥

मथुरा में अष्टमी तिथि को पहुँकर प्रातः कृत्यादि से निवृत्त होकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मन में परिक्रमा का संकल्प करके रात्रि व्यतीत करनी चाहिए ॥ ३९ ॥

अगले दिन नवमी को प्रातः स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहनकर मौनधारण कर नियमपूर्वक परिक्रमा करनी चाहिए, जिससे समस्त पापों की शुद्धि होती है ॥ ४० ॥

प्रदक्षिणां वर्तमानमन्योय यः स्पृहते नरः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥ ४१ ॥
देवस्याग्रे तु वसुधे कूपं तु विमलोदकम् ।
पितरश्चाभिनन्दन्ति पानीयं पिण्डमेव च ॥ ४२ ॥
चतुःसामुद्रिकं नाम कूपं लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र स्नातो नरो भद्रे देवैस्तु सह मोदते ॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति ॥ ४३ ॥

इत्यादि मथुरा-माहात्म्ये मथुरातीर्थप्रादुर्भावनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य किसी अन्य प्रदक्षिणार्थी का स्पर्श करता है, तो उसकी समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४१ ॥

मथुरा तीर्थ में केशवदेव से आगे चलकर विमलोदक कूप है, वहाँ पर जल और पिण्डदान करने से पितृगण प्रसन्न होते हैं ॥ ४२ ॥

विश्वविख्यात चतुःसामुद्रिक कूप में स्नान करने से मनुष्य देवताओं के साथ स्वर्गिक सुख प्राप्त करता है । वहाँ प्राणत्याग करने से मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

मथुरातीर्थ प्रादुर्भाव नामक सप्तम अध्याय सम्पूर्ण ।

अष्टमोऽध्यायः

धरण्युवाच –

श्रुतं तु बहुशो देव तीर्थानां गुणविस्तरम् ।
प्रोच्यमानं तु पुण्याख्यं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ १ ॥
न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैस्तादृशं फलम् ।
प्रदक्षिणं पृथिव्यास्तु यादृशं तीर्थसेवया ॥ २ ॥
पृथिव्याश्चतुरन्तायाः क्रमणं दुर्गमं प्रभो ।
सर्वतीर्थाभिगमनमस्ति दुर्गतमं नृणाम् ॥ ३ ॥
अस्ति कश्चिदुपायोऽत्र येन सम्यगवाप्यते ।
प्रसादसुमुखो भूत्वा तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ ४ ॥

पृथ्वी बोली – हे जनार्दन ! विविध तीर्थों का गुणगान, माहात्म्य मैंने आपकी कृपा से अनेक प्रकार से श्रवण किया ॥ १ ॥

जो फल तीर्थ सेवन से प्राप्त होता है, वह दान, तप, यज्ञ, पृथ्वी की प्रदक्षिणा से भी नहीं मिलता ॥ २ ॥

चारों दिशाओं में विस्तृत तीर्थों का परिक्रमण मनुष्यों के लिए अत्यन्त कठिन है । प्रत्येक प्राणी सरलता पूर्वक तीर्थाटन नहीं कर पाता ॥ ३ ॥

यदि ऐसा कोई सरल उपाय है, जिससे तीर्थ-सेवन सुगम हो सके, कृपा करके वह सब मुझे बताइये ॥ ४ ॥

श्री वाराह उवाच –

श्रृणु भद्रे महत्पुण्यं पृथिव्यां सर्वतो दिशम् ।
परिक्रम्य यथाध्वानं प्रमाणं गणितं शुभे ॥ ५ ॥
पृथिव्याः क्रमणे सम्यक् श्रृणु त्वं योजनानि वै ।
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥ ६ ॥

तीर्थान्येतानि दिव्यानि तारकाश्च नभस्तले ।
गणितानि समस्तानि वायुना जगदायुषा ॥ ७ ॥
ब्रह्मणा लोमशेनैव नारदेन ध्रुवेण च ।
जाम्बवता पुरुरवसा रावणेन हनूमता ॥ ८ ॥

श्री वाराह भगवान् बोले –

हे शुभे ! पृथ्वी पर समस्त दिशाओं में स्थित तीर्थों के परिक्रमा मार्ग के परिमाण की गणना की गई है ॥ ५ ॥

उसके संबंध में सुनो । उस परिक्रमा मार्ग का परिमाण एक सौ बत्तीस अब्ज (सौ करोड़) योजन है ॥ ६ ॥

इन दिव्य तीर्थों की और आकाश में तारों की गणना जगत् के प्राण रूप वायु, ब्रह्मा, लोमश, नारद, ध्रुव, जाम्बवन्त, पुरुरवा, रावण, हनुमान आदि ने की ॥ ७-८ ॥

एतैरनेकधा देवैः ससागरवना मही ।
क्रमिता बलिना चैव बाह्यमण्डलरेखया ॥ ९ ॥
अन्तरभ्रमणेनैव सुग्रीवेण महात्मना ।
तथा च पूर्वं देवेन्द्रैः पञ्चभिः पाण्डुनन्दनैः ॥ १० ॥
योगसिद्धैस्तथा कैश्चिन्मार्कण्डेयमुखैरपि ।
क्रमिता न क्रमिष्यन्ति न पूर्वे नापरेजनाः ॥ ११ ॥
अल्पसत्त्वबलोपेतैः प्राणिभिश्चाल्पबुद्धिभिः ।
मनसापि न शक्यन्ते गमनस्य च का कथा ॥ १२ ॥

इन्हीं देवताओं और बलि ने सागर और वन युक्त पृथ्वी की परिक्रमा पृथ्वी के बाह्य मण्डल की रेखा द्वारा की थी ॥ ९ ॥ पृथ्वी की अन्तः सीमा का भ्रमण महात्मा सुग्रीव, देवराज इन्द्र, पञ्च पाण्डव (युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव) योगी, सिद्ध तथा मार्कण्डेय मुनि आदि ने किया । इनसे पूर्व इनके अतरिक्त किसी ने परिक्रमा न की है और न कोई करने में समर्थ होगा ।

अल्पशक्ति, बल से तथा अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति मन से सोच भी नहीं सकते । परिक्रमण का तो कहना ही क्या अर्थात् जाना तो दूर की बात है, मन में विचार भी नहीं किया जा सकता ॥ १०-१२ ॥

सप्तद्वीपेषु यत्तीर्थभ्रमणाच्च फलं लभेत् ।
प्राप्यते चाधिकं तस्मान्मथुरा भ्रमणीयते ॥ १३ ॥
मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ १४ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सुभिः ।
कर्तव्या मथुरां प्राप्य नरैः सम्यक् प्रदक्षिणा ॥ १५ ॥

पृथ्वी उवाच –

यथाविधान क्रमणान्मथुरायामवाप्यते ।
प्रदक्षिणाफलं सम्यगनुक्रमविधिं वद ॥ १६ ॥

सातों द्वीपों में स्थित तीर्थों का भ्रमण करने से जो फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल मथुराभ्रमण से ही प्राप्त हो जाता है (मथुरा का अतिशय महत्त्व द्योतित है ।) ॥ १३ ॥

मथुरा पहुँचकर जो प्राणी परिक्रमा करता है, तब यही समझना चाहिए कि उसने सातों द्वीपों की परिक्रमा कर ली ॥ १४ ॥

अतः समस्त कामनाओं की पूर्ति की इच्छा से प्रयत्न पूर्वक मथुरा की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

श्री पृथ्वी बोलीं – मथुरा तीर्थ की प्रदक्षिणा की विधि और फल बताइये, किस क्रम से परिक्रमा की जानी चाहिए, कहें ॥ १६ ॥

श्री वाराह उवाच –

पुरासप्तर्षिभिः पृष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अमुमेवार्थमप्युक्तो यथा त्वं पृष्टवान्मम ॥ १७ ॥
श्रुत्त्वा सर्वपुराणोक्तं तीर्थानुक्रमणं परम् ।
पृथिव्याश्चतुरन्तायास्तथा तद्वक्तुमुद्यतः ॥ १८ ॥
सर्वदेवेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
सर्वदानेषु यत्प्रोक्तं इष्टापूर्तेषु चैव हि ॥ १९ ॥
फलं तदधिकं प्रोक्तं मथुरायाः परिक्रमे ।
प्रहृष्टा ऋषयो जग्मुरभिवाद्य स्वयंभुवम् ॥ २० ॥

वाराह भगवान बोले – पूर्वकाल में लोकपितामह-ब्रह्मा से सप्तर्षियों ने यही प्रश्न पूछा था, जो तुम अब मुझसे पूछ रहे हो ॥ १७ ॥

ब्रह्मा ने सप्तर्षियों से कहा था, पृथ्वी के चारों दिशाओं में आने वाले समस्त पुराणोक्त तीर्थों के अनुक्रमण के संबंध में बतलाने के पश्चात् भी कुछ अन्य कहना चाहता हूँ ॥ १८ ॥

समस्त देवताओं में जो पवित्रता है, तीर्थयात्रा सेवन का फल, समस्त दानों का फल, इष्ट तथा पूर्त अर्थात् यज्ञ, आदि करना, कुआँ-बावड़ी, तालाब बनवाना, बाग-बगीचे, अन्न-क्षेत्र खुलवाना आदि के फल से भी अधिक मथुरा परिक्रमण का फल होता है ॥ १९ ॥

समस्त ऋषिगण प्रसन्न होकर ब्रह्मा को अभिवादन करके चले गये ॥ २० ॥

आगत्य मथुरां देवीमाश्रमाश्च प्रचक्रमुः ।
ध्रुवेण सहिता आसन् कामयानास्तु तद्दिनम् ॥ २१ ॥
कुमुदस्य तु मासस्य नवम्यां शुक्लपक्षके ।
मथुरोपक्रमं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥

इत्यादि मथुरा माहात्म्ये अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

मथुरा की परिक्रमा करने के आशय से ध्रुव के साथ सभी ऋषिगणों ने मथुरा आकर आश्रम बनाये, वहीं निवास करने लगे ॥ २१ ॥

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को मथुरा की परिक्रमा करके समस्त पापों से मुक्ति होती है ॥ २२ ॥

॥ अष्टम अध्याय सम्पूर्ण ॥

नवमोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

अष्टम्यां प्राप्य मथुरां कार्तिकस्यासिते नरः ।
स्नात्वा विश्रान्तितीर्थे तु पितृदेवार्चने रतः ॥ १ ॥
विश्रान्तिदर्शनं कृत्वा दीर्घविष्णुं च केशवम् ।
दिनान्ते नियमः कार्य्यस्तीर्थे विश्रान्तिसंज्ञके ॥ २ ॥
मथुरां च परिक्रामन् दृष्ट्वा देवं स्वयंभुवम् ।
स्थितं वासुकिरूपेण केशवं क्लेशनाशनम् ॥ ३ ॥
प्रदक्षिणायाः सम्यग्वै फलं प्राप्नोति मानवः ।
उपवासरतः सम्यगल्पमेधाशनोऽथवा ॥ ४ ॥
दन्तकाष्ठं तु सायाह्ने कृत्वा शुद्धयर्थमात्मनः ।
ब्रह्मचर्येण तां रात्रिं कृत्वा संकल्पमात्मनः ॥ ५ ॥
धौतवस्त्रधरः स्नातोमौनव्रतपरायणः ।

श्री वाराह भगवान् बोले –

कृष्ण पक्षीया अष्टमी तिथि को मथुरा पहुँचकर विश्राम घाट पर स्नान करना चाहिए । इसके पश्चात् देव और पितृगणों का वहीं पर पूजन करना चाहिए ॥ १ ॥

विश्रान्तिघाट पर स्थित केशवदेव भगवान् के दर्शन करके रात्रि को ब्रह्मचर्यपूर्वक शयन करना चाहिए ॥ २ ॥

मथुरा की परिक्रमा करते हुए स्वयंभुवदेव का दर्शन करना चाहिए । यहाँ कष्ट दूर करने वाले केशवमगवान् वासुकि रूप में स्थित है ॥ ३ ॥ उस दिन उपवास करना अथवा हविष्य अन्न का भोजन करना चाहिए ॥ ४ ॥ सायंकाल मुख शुद्धि के लिए दातुन करके संकल्प पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रात्रि व्यतीत करनी चाहिए ॥ ५ ॥ प्रातः स्नान करके धुले वस्त्र पहनकर मौन व्रत धारण करना चाहिए ।

तिलाक्षतकुशान् गृह्य पितृदेवार्थमुद्यतः ।
दीपहस्तो वनं गत्वा श्रान्तो विश्रान्तिजागरे ॥ ६ ॥
यथानुक्रमणं तैश्च ध्रुवाद्यैर्ऋषिभिः कृतम् ।
एवं परम्परायातं क्रमणीयं नरोत्तमैः ॥ ७ ॥
प्रदक्षिणावर्तमानो नरो भक्तिसमन्वितः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधफलं लभेत् ॥ ८ ॥

तिल, चावल और दर्भ लेकर पितृगणों तथा देवगणों का पूजन करना चाहिए । हाथ में प्रज्वलित दीपक लेकर वन में जाकर परिक्रमण करें । थकित होने पर विश्राम तथा रात्रि को जागरण करना चाहिए ॥ ६ ॥

ध्रुव आदि ऋषियों ने विधि के अनुसार मथुरा तीर्थ तथा उसके आसपास आने वाले वन तीर्थों की परिक्रमा की । श्रेष्ठ पुरुषों को भी परम्परा का निर्वाह करते हुए इसी क्रम से प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥ ७ ॥

श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा करने वाले व्यक्ति की समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं तथा अश्वमेध यज्ञ का पुण्यफल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

एवं जागरणं कृत्वा नवम्यां नियतः शुचिः ।
ब्राह्मे मुहूर्ते संप्राप्ते ततो यात्रामुपक्रमेत् ॥
तथा प्रारभ्यते यात्रा यावन्नोदयते रविः ॥ ९ ॥
प्रातः स्नानं तथा कुर्यात्तीर्थे दक्षिणकोटिके ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य हनूमन्तं प्रसादयेत् ॥ १० ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं कुमारं ब्रह्मचारिणम् ।
विज्ञाप्य सिद्धिकर्त्तारं यात्रासिद्धिप्रदायकम् ।
यस्य संस्मरणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ॥ ११ ॥
यथा रामस्य यात्रायां सिद्धिस्ते सुप्रतिष्ठिता ।
तथा परिभ्रमन् मेऽद्य भवान् सिद्धिप्रदो भव ॥ १२ ॥

इस प्रकार रात्रि जागरण करके नवमी को पवित्र होकर ब्राह्ममूहूर्त में ही यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। सूर्योदय से पूर्व ही यात्रा आरम्भ की जाती है ॥ ९ ॥

दक्षिणकोटि तीर्थ पर पहुँचकर प्रातः स्नान करके पैर धोकर आचमन करने के पश्चात् हनूमान जी को पूजन के द्वारा प्रसन्न करना चाहिए ॥ १० ॥

इसके पश्चात् समस्त माङ्गल्य प्रदान करने वाले ब्रह्मचारी कुमार कार्तिकेय तथा सिद्धिकारक गणेश जी को परिक्रमण के संबंध में बतलाकर पूर्ति की प्रार्थना करनी चाहिए । उनके स्मरण मात्र से ही समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥

जैसे श्री राम ने वनवास यात्रा में गणेश जी की कृपा से सफलता प्राप्त की वैसे ही मुझ परिक्रमा करने वाले को भी सिद्धि प्रदान करें । इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १२ ॥

इति विज्ञाप्य विधिवद् हनूमन्तं गणेश्वरम् ।
दीपपुष्पोपहारैस्तु पूजयित्वा प्रसादयेत् ॥ १३ ॥
तथैव पद्मनाभं तु दीर्घविष्णुं भयापहम् ।
विज्ञाप्य सिद्धिकर्त्तारं देव्यश्च तदनन्तरम् ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा वसुमतीं देवीं तथैव ह्यपराजिताम् ।
आयुधागारसंस्थां च नृणां सर्वभयापहाम् ॥ १५ ॥
कंसवासनिकां तद्वदौग्रसेनीं तु चर्चिकाम् ।
वधूटीं च तथा देवीं दानवक्षयकारिणीम् ॥ १६ ॥

हनूमान और गणेश जी की वन्दना करके, दीपक पुष्पादि से पूजन करना चाहिए ॥ १३ ॥

उसी प्रकार समस्त भय बाधाओं को दूर करने वाले पद्मनाभ महाविष्णु तथा अन्य सिद्धि प्रदायक देवताओं से प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १४ ॥

अपराजिता वसुमती देवी प्राणियों के सर्व भयों को दूर करने वाले शस्त्रागार में निवास करने वाली कंस-गृह में स्थापित औग्रसेनी, चर्चिका, वधूटी तथा दानव क्षयकारिणी जयदा देवी ॥ १५-१६ ॥

जयदां देवतानां च मातरो देवपूजिताः ।
गृहदेव्यो वास्तुदेव्यो दृष्ट्वाऽनुज्ञाप्य निर्गमेत् ॥ १७ ॥
मौनव्रतधरो गच्छेद् यावद् दक्षिणकोटिके ।
प्राप्य स्नात्वा पितॄंस्तर्प्य दृष्ट्वा देवं प्रणम्य च ।
नत्वा गच्छेदिक्षुवासां देवीं कृष्णसुपूजिताम् ॥ १८ ॥
बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः ।
यानि तीर्थानि तान्येव स्थापितानि महर्षिभिः ।

ख्यातिं गतानि दिव्यानि सर्वपापहराणि च ॥ १९ ॥

देवताओं की पूज्या देवी माता, गृह देवी, वास्तु देवी आदि के दर्शन करके अगली यात्रा की आज्ञा लेकर बढ़ना चाहिए ॥ १७ ॥

मौन व्रत धारण करके दक्षिणकोटितीर्थ में पहुँचकर, स्नान करके, पितृतर्पण करने के पश्चात् श्रीकृष्ण के द्वारा पूजिता इक्षुवासा देवी को प्रणाम करना चाहिए ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में ग्वालों के साथ जिन-जिन स्थलों पर क्रीड़ा की थी, महर्षियों ने उन्हीं तीर्थों की स्थापना की । फलतः वे स्थल समस्त पापों को दूर करने वाले, पवित्र स्थलों के रूप में प्रसिद्ध हुए ॥ १९ ॥

वत्सपुत्रं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं शुभम् ।
अर्कस्थलं वीरस्थलं कुशस्थलमनन्तरम् ।
पुण्यस्थलं महास्थलं महापातकनाशनम् ॥ २० ॥
एवं पञ्चस्थलाख्याता महापातकनाशनाः ।
येषु दृष्टेषु मनुजो ब्रह्मणा सह मोदते ।
शिवं सिद्धिमुखं दृष्ट्वा स्थलानां फलमाप्नुयात् ॥ २१ ॥
हयमुक्तिं ततो गच्छेत् सिन्दूरं ससहायकम् ।
श्रूयते चात्र ऋषिभिर्गीता गाथा पुरातनी ॥ २२ ॥

इसके पश्चात् मङ्गलमय तीर्थ वत्सपुत्र अर्कस्थल, वीरस्थल, कुशस्थल, पुण्यस्थल तथा महास्थल ये पाँच विख्यात, महापापनाशक स्थल हैं, जिनके दर्शन से मनुष्य ब्रह्मलोक का सुख प्राप्त करता है ॥ २० ॥

इससे आगे सिद्धिमुख शिव के दर्शन करके समस्त तीर्थ स्थलों का फल प्राप्त हो जाता है ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर हयमुक्ति तथा सिन्दूर तीर्थ पर पहुँचना चाहिए । इन स्थलों के संबंध में महर्षियों से प्राचीन कथा सुनी जाती है ॥ २२ ॥

अश्वारूढेन तेनैव यात्रेयं समनुष्ठिता ।
अश्वो मुक्तिं गतस्तत्र सहायस्थितः सुखम् ॥ २३ ॥
राजपुत्रः स्थितस्तत्र यानयात्रा न मुक्तिदा ।
तस्माद् यानैस्तु यात्रा च न कर्तव्या फलेच्छया ॥ २४ ॥
लवणस्य गुहां तत्र दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः ।
शत्रुघ्नमीश्वरं चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥

कुण्डं शिवस्य विख्यातं तत्र स्नानान्महाफलम् ।
मल्लिकादर्शनं कृत्वा कृष्णस्य जयदं शुभम् ।
ततः कदम्बखण्डस्य गमनात् सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

एक राजपुत्र घोड़े पर सवार होकर सेवकों के साथ तीर्थ यात्रा कर रहा था, हयमुक्ति स्थल पर पहुँच कर घोड़ा तथा सेवक मुक्त हो गये । राज पुत्र की मुक्ति नहीं हुई ॥ २३ ॥

यह देखकर उसने विचार किया कि सवारी पर यात्रा करने से मुक्ति नहीं हो सकती । अतः फल प्राप्ति की इच्छा से कभी भी वाहन पर यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥ २४ ॥

भक्ति युक्त मन से लवण की गुफा देखकर शत्रुघ्न के दर्शन करने से पापों से मुक्ति होती है ॥ २५ ॥

प्रख्यात शिवकुण्ड में स्नान करके, कृष्ण कों विजय प्रदान करने वाले मङ्गलमय मल्लिका तीर्थ में पहुँचकर कदम्बखण्ड स्थल पर गमन करना चाहिए, जिससे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २६ ॥

अपरं तत्र गुह्याख्यं तीर्थं तस्य समीपतः ।
गमनात् तस्य तीर्थस्य महापातकनाशनम् ।
उल्लोला वरदा तत्र दृष्ट्वा गतिमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥
चर्चिका योगिनी तत्र योगिनी परिवारिता ।
कृष्णस्य रक्षणार्थं हि स्थिता सा दक्षिणां दिशम् ॥ २८ ॥
अस्पृश्या च स्पृशाचैव मातरौ लोकपूजितौ ।
बालानां दर्शनं द्वाभ्यां महारक्षां करिष्यति ॥ २९ ॥
वर्षखातं ततो गत्वा कुण्डं पापहरं शुभम् ॥ ३० ॥

उसके समीप गुह्य नामक तीर्थ है । वहाँ गमन करने से महान् (बड़े-बड़े) पाप नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥

वहीं योगिनियों के समूह से सुरक्षित चर्चिका नामक योगिनी है । वह श्रीकृष्ण की रक्षा हेतु दक्षिण दिशा में स्थापित की गई थी ॥ २८ ॥

समस्त लोक में पूजित स्पृश्य तथा अस्पृश्य माताएं हैं, इनके दर्शन से बच्चों की सुरक्षा होती है ॥ २९ ॥

इसके पश्चात् मङ्गलकारी वर्षखात नामक कुण्ड आता है ॥ ३० ॥

क्षेत्रपालं ततो गत्वा शिवं भूतेश्वरम् हरम् ।
मथुराक्रमणं तस्य जायते सफलं तथा ॥ ३१ ॥

कृष्णक्रीड़ा सेतुबन्धं महापातकनाशनम् ।
वलभीं तत्र क्रीडार्थं दृष्ट्वा देवो गदाधरः ॥ ३२ ॥
गोपकैः सहितैस्तत्र क्षणमेकं दिने-दिने ।
तत्रैव रमणार्थं हि नित्यकालं स गच्छति ॥ ३३ ॥
बलिह्रदं च तत्रैव जलक्रीडाकृतं शुभम् ।
यस्य संदर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३४ ॥

तदनन्तर क्षेत्ररक्षक भूतेश्वर शिव के मंदिर में दर्शन करने चाहिए, इससे मथुरा परिक्रमा सफल होती है ।

श्रीकृष्ण ने जहाँ क्रीड़ा की थी, वहाँ सेतुबंध नामक एक तीर्थ है, जो पापापहारक है । भगवान् गदाधर ने वहाँ क्रीड़ा हेतु इसका निर्माण किया था । वह वहाँ ग्वालों के साथ कुछ समय के लिए क्रीड़ा हेतु जाते थे ॥ ३३ ॥

दूसरा एक 'बलिह्रद' स्थल है, जहाँ कृष्ण ने जल क्रीड़ा की थी, यहाँ केवल दर्शन से ही पाप मुक्ति होती है ॥ ३४ ॥

ततः परं च कृष्णेन कुक्कुटैः क्रीडनं कृतम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण चण्डः सद्गतिमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
स्तम्भोच्चयं सुशिखरं सौरभैः ससुगन्धिभिः ।
भूषितं पूजितं तत्र कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३६ ॥
तस्य प्रदक्षिणं कृत्वा परिपूज्य प्रयत्नतः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं व्रजेत्तु सः ॥ ३७ ॥
वसुदेवेन देवक्या गर्भसंरक्षणाय च ।
कृतमेकान्तशयनं महापातकनाशनम् ॥ ३८ ॥

एक स्थल पर श्रीकृष्ण ने कुक्कुट (मुर्गियों) के साथ क्रीड़ा की थी, जिसके दर्शन करने से चण्ड सद्गति को प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥

इससे आगे सुन्दर शिखर वाला एक ऊँचा स्तम्भ आता है, वहाँ साहसिक कार्य करने वाले श्रीकृष्ण का सुगन्धित द्रव्यों से विभूषण एवं पूजन किया गया था ॥ ३६ ॥

इसकी पूजा तथा प्रदक्षिणा करके नर पाप मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है ॥ ३७ ॥

वसुदेव ने देवकी की गर्भ रक्षा हेतु एकान्त स्थल पर निवास किया था ॥ ३८ ॥

ततो नारायणस्थानं प्रविशेन्मुक्तिहेतवे ।
परिक्रम्य ततो देवान् नारायणपुरोगमान् ॥ ३६ ॥
दृष्ट्वा ततोऽनुविज्ञाप्य गणं सिद्धिविनायकम् ।
कुब्जिकां वामनां चैव ब्राह्मण्यौ कृष्णमानिते ॥ ४० ॥
अनुज्ञाप्य ततः स्थानं द्रष्टुं गर्तेश्वरं शिवम् ।
दृष्टमात्रेण तत्रैव यात्राफलमवाप्यते ॥ ४१ ॥
लोहजङ्घं ततो दृष्ट्वा आरक्षं परमं हरेः ।
रक्षणार्थं हि क्षेत्रस्य यात्रायाः सिद्धिदं नृणाम् ॥ ४२ ॥

इसके पश्चात् मुक्ति की इच्छा से नारायण देव के दर्शन तथा परिक्रमा करनी चाहिए ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् सिद्धिदाता गणेश जी के दर्शन करके, उनकी आज्ञा से कृष्ण के द्वारा सम्मानित कुब्जिका तथा वामन नामक ब्राह्मणियों की आज्ञा लेकर गर्तेश्वर शिव के दर्शन करने चाहिए । वहाँ केवल दर्शन से ही यात्रा सफल होती है ॥ ४१ ॥

आगे चलकर लोहजङ्घ के दर्शन करने चाहिए, इससे मनुष्य यात्रा में सिद्धि (सफलता) प्राप्त करते हैं ॥ ४२ ॥

महाविद्येश्वरी देवी कृष्णरक्षार्थमुद्यता ।
नित्यं सन्निहिता तत्र सिद्धिदा पापनाशिनी ॥ ४३ ॥
कृष्णेन बलभद्रेण गोपैः कंसं जिघांसुभिः ।
सङ्केतकं कृतं तत्र मंत्रनिश्चयकारकम् ॥ ४४ ॥
तदा सङ्केतकेशा च सिद्धा देवी प्रतिष्ठिता ।
सिद्धिप्रदा भोगदा च तेन सिद्धेश्वरी स्मृता ॥ ४५ ॥
सङ्केतकेश्वरीं चैव दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
तत्र कुण्डं स्वच्छजलं महापातकनाशनम् ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण की रक्षा के लिए उद्यत अन्य एक महाविद्येश्वरी देवी का मंदिर है, इस तीर्थ के सेवन से समस्त पापों का हरण होता है । यह देवी परिक्रमा मार्ग में है, सबकी रक्षा करती है तथा सद्गति प्रदान करती है ॥ ४३ ॥

कंस वध के इच्छुक कृष्ण, बलराम तथा ग्वालों ने जहाँ मंत्र निश्चय-कारक सङ्केत किया था, वहाँ सङ्केतकेशा नामक सिद्ध देवी की प्रतिष्ठा हुई ॥ ४४ ॥ ये ऐश्वर्य प्रदात्री, सिद्धिदायिनी होनें के कारण सिद्धेश्वरी कहलाती है ॥ ४५ ॥

संकेतकेश्वरी के दर्शन करके सिद्धि प्राप्त होती है । वहाँ महान् पापों को नष्ट करने वाला स्वच्छ जलयुक्त कुंड है ॥ ४६ ॥

ततो दृष्ट्वा महादेवं गोकर्णेश्वरनामतः ।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥
सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा ततो भद्राणि पश्यति ।
विघ्नराजं ततो गच्छेद् गणेशं विघ्ननाशनम् ।
सर्वसिद्धिप्रदं रम्यं दर्शनाच्च फलं लभेत् ॥ ४८ ॥
गङ्गां साध्वीं च तत्रैव महापातकनाशिनीम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तथा ध्यात्वा सर्वकामान् समश्नुते ॥ ४९ ॥
महादेवमुखाकारं नाम्ना रुद्रमहालयम् ।
क्षेत्रपं तं परं दृष्ट्वा क्षेत्रवासफलं लभेत् ।
तस्मादुत्तरकोटिं च दृष्ट्वा देवं गणेश्वरम् ॥ ५० ॥

वहाँ से आगे गोकर्णेश्वर नामक महादेव के दर्शन करके समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४७ ॥

सरस्वती नदी के दर्शन करके विघ्नराज गणेश मंदिर में पहुँचना चाहिए । जिनके दर्शन से उत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥

महापातकों का नाश करने वाली साध्वी गङ्गा के दर्शन और स्पर्श करने से समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ४९ ॥

महादेव का मुख्स्वरूप रुद्रमहालय नामक एक तीर्थ है । समस्त तीर्थों की रक्षा करने वाले इस तीर्थ के दर्शन से तीर्थस्थल में निवास करने का फल प्राप्त होता है । उत्तरकोटि नामक तीर्थ में जाकर भगवान् गणेशजी के दर्शन करने चाहिए ॥ ५० ॥

द्यूतक्रीडा भगवता कृता गोपजनैः सह ।
नानोपहासरूपेण जिता गोप्यो धनानि च ॥
गोपैरानीय तत्रैव कृष्णाय च निवेदिताः ॥ ५१ ॥
गोपालकृष्णगमनं महापातकनाशनम् ।
समस्तं बालचरितं भ्रमता च यथासुखम् ॥ ५२ ॥
कृतं तत्र यथारूपं तद्रूपं च तथा तथा ।
ऋषिभिः सेवितं ध्यातं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

ततो गच्छेन्महातीर्थं विमलं यमुनाम्भसि ।
स्नात्वापीत्वा पितृ स्तर्प्य नाम्ना रुद्रमहालयम् ।
गार्ग्यतीर्थे महापुण्ये नरस्तत्र तथाक्रमेत् ॥ ५४ ॥

कृष्ण ने यहाँ ग्वालों के साथ द्यूतक्रीड़ा की थी । विविध हासोपहास पूर्ण क्रीड़ाएँ करके गोपियों तथा धन को जीत लिया और ग्वलों ने सब कुछ लाकर कृष्णार्पण किया ॥ ५१ ॥

श्रीकृष्ण ने बचपन में जिन स्थलों पर लीला की थी, उनमें भ्रमण करने से पापों का विनाश होता है ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्ण ने वहाँ जो-जो रूप धारण किये थे, उन रूपों का ऋषियों ने ध्यान और पूजन किया था । विष्णु के अवतार रूप श्रीकृष्ण का यह माहात्म्य पवित्र है ॥ ५३ ॥

उसके पश्चात् रुद्रमहालय नामक तीर्थ पर पहुँचना चाहिए । वहाँ जाकर यमुना नदी के निर्मल जल में स्नान, आचमन करके पितृ-तर्पण करना चाहिए । पुण्यवान् गार्ग्य तीर्थ की परिक्रमा करके ॥ ५४ ॥

भद्रेश्वरे महातीर्थे सोमतीर्थे तथैव च ।
स्नात्वा सोमेश्वरं देवं दृष्ट्वा यात्राफलं लभेत् ॥ ५५ ॥
सरस्वत्याः सङ्गमे च सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
घण्टाभरणके तद्वत् तथा गरुड़केशवे ॥ ५६ ॥
धारालोपनके तद्वत् बैकुण्ठे खण्डवेलके ।
मन्दाकिन्याः संयमने असिकुण्डे तथैव च ॥ ५७ ॥
गोपानां तीर्थके चैव तथैव मुक्तिकेश्वरे ।
वैलक्षगरुडे चैव महापातकनाशने ॥ ५८ ॥

भद्रेश्वर तथा सोमतीर्थ में जाना चाहिए । सोमेश्वर तीर्थ में स्नान करके भगवान् सोमेश्वर का दर्शन करने से यात्रा सफल होती है ॥ ५५ ॥

सरस्वती सङ्गम पर देव, पितृ-तर्पण करके घण्टाघभरण, गरुड़, केशव, धारालोपन, बैकुंठ, खंडवेल तथा गङ्गातट पर स्थित संयमन असिकुंड, गोपतीर्थ मुक्तिकेश्वर, वैलक्ष गरुड़ आदि तीर्थ महापातक नाशक हैं इनका दर्शन करके यात्रा के फल को प्राप्त करें ॥ ५६-५८ ॥

एते तीर्था महापुण्या यथा विश्रान्तिसंज्ञकः ।
ऐषु तीर्थेषु क्रमितो भक्तिमान् विजितेन्द्रियः ।

देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य ततो देवं प्रसादयेत् ॥ ५९ ॥
अविमुक्तेश देवेश सप्तर्षिभिरनुष्ठितः ।
मथुराक्रमणीयं मे सफलं स्यात् तवाज्ञया ॥ ६० ॥
इत्येवं देवदेवेशं विज्ञाप्य क्षेत्रपं शिवम् ।
विश्रान्तिसंज्ञके स्नानं कृत्वाया च पितृतर्पणम् ॥ ६१ ॥
गतश्रमं परिक्रम्य स्तुत्वा दृष्ट्वा प्रणम्य च ।
सुमङ्गलां ततो गच्छेद् यात्रासिद्धिं प्रसादयेत् ॥ ६२ ॥

ये तीर्थ पापनाशक हैं । विश्रान्ति तीर्थ के समान् पवित्र हैं । श्रद्धालु और जितेन्द्रिय मनुष्यों को इन तीर्थों में जाकर देवों और पितृगणों का भली-भाँति पूजन करना चाहिए। तदनन्तर भगवान् की स्तुति करनी चाहिए । हे देवेन्द्र ! अविमुक्तेश ! आपकी आज्ञा से मेरी यह मथुरा-परिक्रमा सफल हो जाये ॥ ५९-६० ॥

हे देवदेवेश ! क्षेत्रपाल शिव की इस प्रकार स्तुति करके विश्रान्ति तीर्थ में स्नान और पितृ-तर्पण करना चाहिए ॥ ६१ ॥

गतश्रम मंदिर की परिक्रमा करके, दर्शन, स्तुति और प्रणाम पूर्वक यात्रा की सफलता के लिए सुमङ्गला देवी को प्रसन्न करना चाहिए ॥ ६२ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
यात्रेयं त्वत्प्रसादेन सफला मे भवत्विति ॥ ६३ ॥
पिङ्गलादेश्वरं[1] देवं पिप्पलादेन पूजितम् ।
विश्रान्तस्तु परिक्रम्य श्रान्तस्तत्र महातपाः ॥ ६४ ॥
उपलिप्य ततस्तस्य शीर्षस्योपरितो महान् ।
उपरि लिङ्गं संस्थाप्य स्वनाम्ना चिन्हितं शिवम् ॥ ६५ ॥
कर्कोटकं तथा नागं महादुष्ट निवारणम् ।
दृष्ट्वा गच्छेत्ततो देवीं या कृष्णेन विनिर्मिता ॥ ६६ ॥

समस्त मङ्गलों की मङ्गलस्वरूपा, समस्त कामनाएँ पूर्ण करने वाली शिवा ! आपकी कृपा से मेरी यात्रा सफल हो ॥६३॥

पिप्पलाद मुनि ने इस क्षेत्र में पिङ्गलादेश्वर शिव का पूजन किया था ॥६४॥

परिक्रमा से श्रान्त मुनि ने यहाँ विश्राम किया था तथा भूमि को लीपकर उस पर स्वनाम अङ्कित करके शिवलिङ्ग स्थापित किया ॥ ६५ ॥

---

१. पिप्पलादेश्वरं ।

महान्दुष्टों के विनाशक कर्कोटक नाग के दर्शन करके श्रीकृष्ण के द्वारा विनिर्मित देवी के मन्दिर में जाना चाहिये ॥ ६६ ॥

कंसभेदं प्रथमतः श्रुतं यत्र कुमन्त्रितम् ।
सुखवासं च वरदं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ६७ ॥
सुखासीनं च तत्रैव स्थापितं शकुनाय वै ।
सानुकूलः स्वरो यत्र प्रवेशे दक्षिणः स्वनः ॥ ६८ ॥
ध्याता शुभाय कृष्णेन, स्वसा सातिसुखप्रदा ।
भयार्तेन च कृष्णेन ध्याता देवी च चण्डिका ॥ ६९ ॥
स्थापिता सिद्धिदा तत्र नाम्ना चार्तिहरा ततः ।
दृष्ट्वा सर्वार्तिहरणं यस्य देव्याः सुखी नरः ॥ ७० ॥

इसके पश्चात् कंस ने जिस स्थान पर सचिवों के साथ कुमंत्रणा की थी, वह स्थान आता है । अत्यन्त कठिन कार्यों के कर्ता श्रीकृष्ण का कल्याणकारी विश्राम स्थल, जहाँ उन्होंने सुखपूर्वक विश्राम किया था, उसका दर्शन मङ्गलमय है । इस स्थल पर प्रवेश करते समय दक्षिण भाग का सुशब्द कार्य की अनुकूलता को सूचित करता है ॥ ६७-६८ ॥

स्वयं श्रीकृष्ण को कंस वध की सफलता के लिए प्रार्थना करने पर इस देवी का शुभ सूचक उत्तम दर्शनसुख प्राप्त हुआ था ॥ ६९ ॥

भयार्त्त होकर कृष्ण ने चण्डिका देवी की आराधना की तथा सिद्धिदात्री देवी की स्थापना की । दुःख नाशिनी देवी के दर्शन से मनुष्य सुख प्राप्त करता है ॥ ७० ॥

कृष्णस्य कंसघातार्थं संभूतस्तमथोत्तरम् ।
तं दृष्ट्वा मनुजः कामान् सर्वानिष्टान् प्रवर्तते ॥ ७१ ॥
वज्राननं ततो ध्यात्वा कृष्णोमल्लजिघांसया ।
निहत्य मल्लान् पश्चाद्धि वज्राननमकल्पयत् ॥ ७२ ॥
वाञ्छितार्थफलं चेच्छन् कृष्णेन स्यान्मनोरथान् ।
यस्यै-यस्यै देवतायै तस्यै तस्यै ददौ मखम् ॥ ७३ ॥
उपयाचितं तु माङ्गल्यं सर्वपापहरं शुभम् ।
कृष्णस्य बालचरितं महापातक नाशनम् ॥ ७४ ॥

श्रीकृष्ण ने कंस वध हेतु योगमाया के रूप में जन्म लेने के लिए देवी की याचना की । उन्हीं योगमाया के दर्शन से मनुष्य अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करता है ॥ ७१ ॥

कंस चाणूर और मुष्टिक जैसे मल्लों के वध की इच्छा से श्रीकृष्ण ने वज्रानन (सूर्य) की आराधना की थी और मल्लों के वध के पश्चात् सूर्य तीर्थ की स्थापना की ॥ ७२ ॥

यह तीर्थ इच्छित कामनाओं का पूरक है । जिन-जिन देवताओं ने श्रीकृष्ण के कार्य में साहाय्य दिया, उन-उन को यज्ञ का भाग दिलवाया और समस्त पापों के नाश हेतु कल्याणकारी और पवित्र वर की याचना की ॥ ७३ ॥

मंगलमय, समस्त पापों का विनाशक देवताओं के द्वारा प्रार्थित श्रीकृष्ण का बालचरित्र पापों का नाशक है ॥ ७४ ॥

सूर्यं संवरदं देवं माथुराणां कुलेश्वरम् ।
दृष्ट्वा तत्रैव दानं च दत्त्वा यात्रां समापयेत् ॥ ७५ ॥
एवं प्रदक्षिणं कृत्वा नवम्यां शुक्लकौमुदीम् ।
सर्वान् कुलान् समादाय विष्णुलोके महीयते ॥ ७६ ॥
क्रमतः पदविन्यासा यावन्तः सर्वतो दिशः ।
तावन्तः कुलसंभूताः सूर्ये तिष्ठन्ति शाश्वते ॥ ७७ ॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च चौरा भग्नव्रताश्च ये ।
अगम्यागमने शीलाः क्षेत्रदारापहारकाः ॥
मथुराक्रमणं कृत्वा विपाप्मानो भवन्ति ते ॥ ७८ ॥

माथुरों (मथुरा वासियों) के कुल देवता, वरद सूर्य भगवान् के दर्शन करके तथा उस स्थल पर दान-दक्षिणा देकर यात्रा पूर्ण करनी चाहिए ॥ ७५ ॥

इस प्रकार कार्तिकमास की शुक्ल पक्षीया नवमी को प्रदक्षिणा करके अपने कुलबान्धवों सहित मनुष्य विष्णुलोक का सम्मान प्राप्त करता है ॥ ७६ ॥

मथुरा की प्रदक्षिणा के समय पृथ्वी पर जितने पैर पड़ते हैं उस कुल में उत्पन्न होने वाले मनुष्य सूर्यलोक में शाश्वत निवास प्राप्त करते हैं ॥ ७७ ॥

ब्रह्म-हत्यारा, मदिरापान करने वाला, चोर, नियम के विरुद्ध कार्य करने वाला, अगम्या स्त्री के साथ गमन करने वाला, शीलभङ्ग करने वाला, भूमि और स्त्री-हरण करने वाला मनुष्य भी मथुरा परिक्रमा करके पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ७८ ॥

अन्यदेशागतो दूरात् परिक्रमति यो नरः ।

तस्य संदर्शनादन्ये पूताः स्युर्विगताभयाः ॥ ७६ ॥
श्रुतं यैश्च विदूरस्थैः कृतयात्रं नरं नरैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ८० ॥

इति मथुरामाहात्म्ये मथुरापरिक्रम प्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अन्य दूर देशों से आकर जो मनुष्य मथुरा की परिक्रमा करते हैं उनके दर्शन से ही अन्य मनुष्य भी पाप रहित हो जाते हैं ॥ ७६ ॥

जो दूर देश में रहते हुए भी अमुक व्यक्ति मथुरा की परिक्रमा करके आया है, केवल यह श्रवण भी कर लेते हैं, उन मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं और वे परमपद की प्राप्ति करते हैं ॥ ८० ॥

मथुरा-परिक्रम प्रादुर्भाव नामक नौवाँ अध्याय संपूर्ण ॥

❀ ❀ ❀

दशमोऽध्यायः

ये धर्मविमुखाः मूढ़ाः सर्वज्ञानविवर्जिताः ।
का गतिः कृष्ण तेषां हि विहिता नरके सुरैः ॥ १ ॥
अभुक्त्वा नारकं दुःखं सुकृतैः पुण्यदैः नृणाम् ।
प्रयान्ति कर्मणा येन तमुपायं ब्रवीहि मे ॥ २ ॥

श्री वाराह उवाच --

सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम् ।
नरकार्तिहरा देवी मथुरा पापघातिनी ॥ ३ ॥
मथुरावासिनो ये च तीर्थानां चोपसेवकाः ।
वनानां दर्शको वाऽथ मथुराक्रमकोऽपि वा ॥ ४ ॥
एषां मध्ये कृतं यैश्च एकं च शतमोजसा ।
न ते नरकं भोक्तारः स्वर्गभाजो भवन्ति ते ॥ ५ ॥

जो धर्म से विमुख हैं, मूर्ख एवं सम्पूर्ण ज्ञान से रहित है । हे कृष्ण ! उन लोगों की नरक में देवताओं ने क्या गति बतलाई है ? ॥ १ ॥ पुण्यप्रद सत्कर्मों से नरक के दुःख का उपभोग न करके मनुष्य जिस कर्म से स्वर्गगामी होते हैं, उस उपाय को आप मुझे बताएं ॥ २ ॥ वाराह भगवान् ने कहा-- समस्त धर्म कार्यों से हीन, दुष्ट मनुष्यों के नारकीय दुःखों को दूर करने वाली, पापों की विनाशिका मथुरा नामक नगरी है ॥ ३ ॥ जो प्राणी मथुरा निवासी है, विविध तीर्थों का सेवन करते हैं, वनों का दर्शन अथवा मथुरा की परिक्रमा करते हैं ॥ ४ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार जो इन वनों की एक सौ एक बार परिक्रमा करते हैं वे नरक के भागी नहीं होते, स्वर्ग के पात्र होते हैं ॥ ५ ॥

आदौ मधुवनं नाम द्वितीयं तालमेव च ।
वनं कुन्दवनं चैव तृतीयं वनमुत्तमम् ॥ ६ ॥
चतुर्थं काम्यकं वनं वनानां वनमुत्तमम् ।
पञ्चमं वै बहुवनं षष्ठं भद्रवनं स्मृतम् ॥ ७ ॥

सप्तमं तु वनं भूमे खदिरं लोकविश्रुतम् ।
महावनं चाष्टमं तु सदैव च ममप्रियम् ॥ ८ ॥
लोहार्गलवनं नाम नवमं पातकापहम् ।
नवं बिल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम् ॥ ९ ॥
एकादशं तु भाण्डीरं द्वादशं वृन्दकावनम् ।
एतानि ये प्रपश्यन्ति न ते नरकभोगिनः ॥ १० ॥
यथाक्रमेण ये यात्रां वनानां च जितेन्द्रियाः ।
करिष्यन्ति वरारोहे इन्द्रलोकं व्रजन्ति ते ॥ ११ ॥

इति देववनंप्रभवोनाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

पहला मधुवन, दूसरा तालवन, तीसरा कुन्दवन सभी वनों में उत्तम हैं ॥ ६ ॥ चौथा कामवन, पाँचवां बहुलवन, छठा भद्रवन है ॥ ७ ॥ हे भूमि ! सातवाँ वन खदिर वन है, जो कि लोकविख्यात है और आठवाँ महावन मुझे सदैव प्रिय है ॥ ८ ॥ पापों को विनष्ट करने वाला नौवाँ वन लोहार्गल तथा देवताओं का पूज्य दसवाँ वन बिल्ववन है ॥ ९ ॥ ग्यारहवाँ भाण्डीरवन तथा बारहवाँ वृन्दावन है । इन द्वादश वनों के दर्शन जो प्राणी करते हैं, वे नरक के भागी नहीं होते ॥ २० ॥ हे सुकटि ! जो जितेन्द्रिय क्रमानुसार इन वनों की यात्रा करेंगे वे इन्द्रलोक गमन करने वाले होंगे ॥ ११ ॥

देववनप्रभाव नामक दसवाँ अध्याय संपूर्ण ॥

❀ ❀ ❀

एकादशोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
चक्रतीर्थे पुराकृत्तं मथुरायास्तथोत्तरे ॥ १ ॥
महागृहोदयं नाम जम्बूद्वीपस्य भूषणम् ।
तस्मिन् पुरवरेदिव्ये ब्राह्मणो वसते शुभे ॥ २ ॥
स कन्यां पुत्रमादाय ब्राह्मणो वेदपारगः ।
शालिग्रामं महापुण्यमगच्छद् ब्राह्मणोत्तमः ॥ ३ ॥
तत्रासौ वासमकरोत्पुण्यसेवी जितेन्द्रियः ।
तीर्थसेवी तथा स्नायी देवतादर्शने रतः ॥ ४ ॥
तत्र सिद्धेन संवासो ब्राह्मणस्याभवत्तदा ।
स सिद्धो वसते नित्यं कल्पग्रामे च सर्वदा ॥ ५ ॥

हे वसुन्धरे ! मथुरा के उत्तर में स्थित चक्रतीर्थ में जो प्राचीन घटना हुई, वह कहता हूँ, उसे सुनो ॥ १ ॥ हे शुभे ! जम्बूद्वीप का अलंकार महागृहोदय नामक स्थान है, उस श्रेष्ठ पुर में ब्राह्मण रहता था ॥ २ ॥ वेदज्ञ, उत्तम ब्राह्मण अपनी कन्या और पुत्र को लेकर पवित्रशालग्राम (मुक्तिनाथ) क्षेत्र में गया ॥ ३ ॥ वहाँ सत्कर्मों का आचरण करने वाले उस जितेन्द्रिय ने निवास किया । वहाँ रहकर तीर्थों के सेवन और देवताओं के दर्शन में आसक्त रहता था ॥ ४ ॥ तब वहाँ ब्राह्मण का एक सिद्ध के साथ सम्पर्क हुआ । वह सिद्ध सदैव कल्पग्राम में निवास करता था ॥ ५ ॥

गच्छते सर्वकालं तु शालिग्रामे वसुन्धरे ।
स तेन सह संगत्य कान्यकुब्जनिवासिना ॥ ६ ॥
कल्पग्रामविभूतिं च नित्यकालमवर्णयत् ।
कल्पग्राम विभूतिं च श्रुत्वा स मुनिसत्तमः ॥ ७ ॥

गमने बुद्धिरुत्पन्ना ततः सिद्धमयाचत ।
मित्रत्वं वर्तते सिद्ध नयस्वात्मनिवेशने ॥ ८ ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा सिद्धो वचनमब्रवीत् ।
तत्र सिद्धा हि गच्छन्ति तेन तत्र गतिर्भवेत् ॥ ९ ॥
प्रार्थनादुःखलाभं तु शृणु वै ब्राह्मणोत्तम ।
आत्मयोगबलेनैव चलिष्यामि सपुत्रकः ॥ १० ॥

हे पृथ्वी ! वह शालिग्राम में भी जाया करता था । वह उस कान्यकुब्ज निवासी ब्राह्मण के साथ रहकर 'कल्पग्राम' के ऐश्वर्य का वर्णन करता था । उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कल्पग्राम की प्रशंसा को सुनकर वहाँ जाने का विचार किया और सिद्ध पुरुष से प्रार्थना की । हे सिद्ध ! तुम मेरे मित्र हो अतः अपने गृह ले चलो ॥ ७-८ ॥ ब्राह्मण के वचन सुनकर सिद्ध बोला – वहाँ सिद्ध पुरुष ही जा सकते हैं, तुम्हारा गमन नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणों में उत्तम ! सुनो, प्रार्थना से दुःख लाभ ही है । तब वह बोला मैं आत्म-योग-शक्ति से पुत्र सहित वहाँ जाऊँगा ॥ १० ॥

दक्षिणे तु करे गृह्य ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
वामे चैव करे गृह्य तस्य पुत्रं महामतिम् ॥ ११ ॥
उत्पपात तदा सिद्धो गृहीत्वा ब्राह्मणोत्तमौ ।
कल्पग्रामे तु तौ मुक्तौ पितापुत्रौ वसुन्धरे ॥ १२ ॥
तत्र तौ वसतो नित्यं कल्पग्रामे द्विजोत्तमौ ।
तत्र कालेन महता रुग्देहे चाभवत्तदा ॥ १३ ॥
रुजां तु पीड्यमानः सः दशमीं च दशां गतः ।
मर्तुकामो तु द्विजवरो तु तं निरीक्ष्य सुतमुत्तमम् ॥ १४ ॥
उवाच पुत्रं धर्मात्मा मरणे समुपस्थिते ।
गंगातीरे च मां पुत्र नय त्वं मा बिलम्बय ॥ १५ ॥

वेद पारगामी ब्राह्मण को दायें हाथ में तथा उसके बुद्धिमान पुत्र को बायें हाथ में पकड़कर वह सिद्ध उन दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मणों को लेकर उड़ा । हे पृथ्वी ! उस सिद्ध ने उन पिता-पुत्रों को कल्पग्राम में छोड़ दिया ॥ ११-१२ ॥ वे दोनों वहाँ रहने लगे । बहुत समय के बाद उसका शरीर रुग्ण हो गया । उस रोग से दुःखी होता हुआ वह मरणासन्न हो गया । मृत्यु की कामना वाले धर्मात्मा ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मृत्यु को उपस्थित देखकर अपने पुत्र को कहा । हे पुत्र ! मुझे गंगा तट पर ले चलो, देर मत करो ॥ १३-१५ ॥

तेन पुत्रेण नीतोऽसौ गंगातीरे महामुनिः ।
रुरोद पुत्रस्तु तदा पितृस्नेहसमन्वितः ॥ १६ ॥
वेदाध्ययनशीलः सः पितृभक्त्यानियंत्रितः ।
वसतस्यस्य वै तत्र कालो जातो महामतेः ॥ १७ ॥
कल्पग्रामे तदा सिद्धस्तस्य कन्या सुमध्यमा ।
वरमन्वेषयन्ती सा न प्राप्तस्तु तया मतः ॥ १८ ॥
कदाचिद्दैवयोगेन कान्यकुब्जनिवासिनः ।
गृहे प्रविष्टो विप्रः स भोजनार्थं महामतिः ॥ १९ ॥
पृष्टोऽसौ ब्राह्मणो भद्रे क्व भवांस्त्वमिहागतः ।
स सर्वं कथयामास यथावृत्तं दृढ़व्रतः ॥ २० ॥

पुत्र उस महामुनि को गंगा तट पर ले गया । तब पिता के स्नेह के कारण पुत्र रोने लगा ॥ १६ ॥ वेदों का अध्ययन करने वाले, पितृभक्ति-युक्त उस बुद्धिमान् का अधिक समय वहीं रहते हुए बीत गया ॥ १७ ॥ कल्पग्राम में सिद्ध था जिसकी कन्या सुन्दर कटिवाली थी, जो अपने योग्य वर को खोज रही थी, लेकिन प्राप्त न कर सकी ॥ १८ ॥ सौभाग्य से कान्यकुब्ज (कन्नौज) निवासी वह ब्राह्मण भोजन के लिए उसी घर में प्रविष्ट हुआ ॥ १९ ॥ उस ब्राह्मण से कन्या ने पूछा – आप कहाँ से आये हैं ? उस दृढ़ व्रत वाले ब्राह्मण ने सब कुछ बता दिया ॥ २० ॥

दिव्यज्ञानेन तं ज्ञात्वा पूजयामास तं द्विजः ।
पूजयित्वा यथान्यायं कन्यां तस्मै ददौ तदा ॥ २१ ॥
श्वसुरस्य गृहे नित्यं भोजनं कुरुते द्विजः ।
वसते पितृसान्निध्ये प्रतिचारी स पुत्रकः ॥ २२ ॥
कालेभगवतस्तस्य अतिक्षीणः पिता तदा ।
तं दृष्ट्वा क्षीणतां प्राप्तं श्वसुरं पर्यपृच्छत् ॥ २३ ॥
स्वाभिन्पितुर्मेमरणं भविष्यति वदस्व माम् ।
जामातृवचनं श्रुत्वा प्रहस्य श्वसुरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥
शूद्रान्नं भक्षितं तेन नित्यकालं द्विजोत्तम ।
तस्य चाहारदोषेण मृत्युर्दूरं गतः पितुः ॥ २५ ॥

दिव्य ज्ञान से परिचय प्राप्त कर उस ब्राह्मण का स्वागत किया । उचित रीति से सम्मानित करके उसको अपनी कन्या प्रदान कर दी ॥ २१ ॥ वह ब्राह्मण नित्य ही श्वसुर गृह में भोजन करने लगा और पिता के समीप रहता था ॥ २२ ॥ धीरे-धीरे उसका पिता क्षीण होने लगा । पिता की दुर्बलता को देखकर श्वसुर से पूछा। हे स्वामी ! मुझे बताओ क्या पिता की मृत्यु होगी ? जमाई के वचन सुनकर श्वसुर ने हँसकर कहा -- हे द्विजोत्तम ! इन्होंने नित्यप्रति शूद्र का अन्न खाया है, उसी भोजन के दोष के कारण मृत्यु पिता से दूर चली गयी है ॥ २३-२५ ॥

पादयोर्विद्यते तच्च शूद्रान्नं च पितुस्तव ।
जान्वोरूर्ध्वेन न विद्येत शूद्रान्नं च द्विजोत्तम ॥ २६ ॥
शूद्रान्नेन विहीनस्य तस्य मृत्युर्भविष्यति ।
श्वसुरस्य वचस्तस्य पितुरग्रे न्यवेदयत् ॥ २७ ॥
तस्य पुत्रस्य वचनं श्रुत्वात्मानं विगर्हयत् ।
ततः प्रभाते विमले उदिते च दिवाकरे ॥ २८ ॥
पितुः समीपात्स गतः श्वसुरस्य निवेशनम् ।
गते पुत्रे पिता तस्य रुजा त्वत्यन्त पीडितः ॥ २९ ॥
दुःखेन पीडितः क्षीणो मर्तुकामो द्विजोत्तमः ।
गंगातीरात्समुत्तिष्ठन् दिशः सर्वा विलोकयन् ॥ ३० ॥

वह शूद्रान्न तुम्हारे पिता के पैरों में विद्यमान है॥ २६ ॥ हे द्विजोत्तम ! वह अन्न जानुओं से ऊपर न पहुँचे । उस शूद्रान्न से रहित हुए तुम्हारे पिता की मृत्यु होगी । श्वसुर की यह बात पुत्र ने पिता को बता दी ॥ २७ ॥ पुत्र के वचन सुनकर पिता ने आत्म निन्दा की । प्रातःकाल सूर्योदय होने पर पुत्र पिता के पास से श्वसुर के घर गया । पुत्र के चले जाने पर पिता को बहुत अधिक पीड़ा हुई ॥ २८-२९ ॥ दुख से पीड़ित दुर्बल, मृत्यु की इच्छा वाले उस ब्राह्मण ने गंगा तट से उठते हुए सभी दिशाओं की ओर देखा ॥ ३० ॥

सन्निधावुपलं दृष्ट्वा गृहीतं तेन तत्पदा ।
चूर्णयामास तौ पादौ पीडया मोहितो द्विजः ॥ ३१ ॥
ततः प्राणान्परित्यज्य गतोऽसौ कालवर्तनम् ।
स्नात्वा भुक्त्वा ततो गत्वा प्रेक्ष्य तं पितरं मृतम् ॥ ३२ ॥

गतसंज्ञं च पितरं दृष्ट्वा स रुरुदे भृशम् ।
रुदित्वा सुचिरं कालं शास्त्रं दृष्ट्वा व्यचिन्तयत् ॥ ३३ ॥
संस्कारयोग्यता नास्ति इत्येवं पुनरब्रवीत् ।
सर्पशृङ्गिहतानां च दंष्ट्रिविप्रहतस्य च ॥ ३४ ॥
आत्मनस्त्यागिनश्चैव आपस्तम्बोऽब्रवीदिदम् ।
आत्मघाती नरः पापो नरके पच्यते चिरम् ॥ ३५ ॥

समीप ही पत्थर का टुकड़ा देखकर तुरन्त उठा लिया और पैरों को तोड़ लिया उस पीड़ा से ब्राह्मण मूर्च्छित हो गया ॥ ३१ ॥ तब प्राणों को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हुआ । स्नान और भोजन करके वहाँ से (श्वसुर गृह से) जाकर पिता को मरा हुआ देखकर पुत्र अत्यधिक रुदन करने लगा । बहुत देर तक रुदन करके शास्त्र की दृष्टि से विचार किया ॥ ३३ ॥ आपस्तम्ब मुनि ने कहा है -- साँप काटने से, सींग और दाँत वाले प्राणियों के मारने से, अपने प्राणों का त्याग करने से संस्कार योग्यता नहीं रहती । आत्म-हत्या करने वाला पापी मनुष्य नरक में जाता है ॥ ३४-३५ ॥

प्रायश्चित्तं विधीयीत् न दद्याद्योदकक्रियाम् ।
अहो दैवं सुबलवत्पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३६ ॥
तस्य पुत्रो महाभागे गतः श्वसुरमन्दिरम् ।
तं दृष्ट्वा श्वसुरो दीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
ब्रह्महत्या तु ते जाता गच्छ त्वं च यथेप्सितम् ।
श्वसुरस्य वचः श्रुत्वा जामाता वाक्यमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
न मया ब्राह्मणवधः कदाचिदपि कारितः ।
केन दोषेण मे सिद्ध ब्रह्महत्या फलं महत् ॥ ३९ ॥
जामातुर्वचनं श्रुत्वा श्वसुरो वाक्यमब्रवीत् ।
पितुस्त्वया वधोपायो विनिर्दिष्टश्च पुत्रक ॥ ४० ॥

प्रायश्चित्त करना चाहिए, जल-क्रिया नहीं । आश्चर्य है कि भाग्य बलवान् है और पुरुषार्थ व्यर्थ ॥ ३६ ॥ हे महाशया ! उसका पुत्र श्वसुर के घर गया, उसको देखकर श्वसुर दीन वचन बोला ॥ ३७ ॥ तुम्हें ब्रह्म-हत्या का पाप लगा है, अब जहाँ चाहो जाओ । श्वसुर की बात सुनकर जमाई बोला ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण को मैंने कभी नहीं मारा, हे सिद्ध ! ब्रह्म-हत्या मुझे किस दोष से लगी

है ? ॥ ३६ ॥ जमाई की बात सुनकर श्वसुर बोला -- हे पुत्र ! तुमने पिता की मृत्यु के उपाय को निर्दिष्ट किया था ॥ ४० ॥

तेन दोषेण विप्रर्षे ब्रह्महत्या फलं तव ।
आसन्नशयनाच्चैनं भोजनात्कथनादिषु ॥ ४१ ॥
सम्वत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
तस्मान्मम गृहे नास्ति वासस्ते हि द्विजोत्तम् ॥ ४२ ॥
श्वसुरस्य वचः श्रुत्वा जामाता वाक्यमब्रवीत् ।
किं मया वद कर्तव्यं त्वया त्यक्तेन सुव्रत ॥ ४३ ॥
तस्य ततः वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणः शंसितव्रतः ।
कल्पग्रामं परित्यज्य मथुरां याहि सुव्रत ॥ ४४ ॥
नान्यत्र तव संशुद्धि कदाचित्पितृघातिनः ।
कल्पग्रामं परित्यज्य तत्क्षणादेव निस्सृतः ॥ ४५ ॥
ततः कालेन महता सम्प्राप्तो मथुरां पुरीम् ।
ब्राह्मणेभ्यो बहिः स्थाने नित्यं तु वसते द्विजः ॥ ४६ ॥

हे विप्र ! उसी दोष से तुम्हें ब्रह्म-हत्या का फल मिला है, क्योंकि पतित व्यक्ति के साथ एक वर्ष तक शयन, भोजन, वार्तालाप करने पर निकट रहने वाला भी पतित हो जाता है । अतः तुम मेरे घर नहीं रह सकते ॥ ४१-४२ ॥ तब श्वसुर के वचन सुनकर जामाता बोला -- हे सुव्रत ! आपके द्वारा परित्यक्त मुझे अब क्या करना चाहिए ॥ ४३ ॥ तब श्वशुर ने कहा -- कल्पग्राम छोड़कर मथुरा जाओ ॥ ४४ ॥ पिता के विनाशक तुम्हारी शुद्धि और कहीं नहीं हो सकती । वह तत्क्षण ही कल्पग्राम छोड़कर चला गया ॥ ४५ ॥ कुछ ही समय में मथुरा पहुँचा और ब्राह्मण बस्ती से दूर रहने लगा ॥ ४६ ॥

कन्यापुरनिवासी तु कुशिकोऽथ नराधिपः ।
तस्य सत्रं नित्यकालं मथुरायां प्रवर्तते ॥ ४७ ॥
द्वे सहस्रे तु विप्राणां तस्य सत्रे च भुञ्जते ।
ब्राह्मणानां सदोच्छिष्टं ततश्चोद्धरते तु सः ॥ ४८ ॥
चक्रतीर्थं समासाद्य स्नानं स कुरुते सदा ।
न भिक्षां कुरुते तत्र भोजनार्थं न गच्छति ॥ ४९ ॥

ततः कालेन महता चिन्ताभूच्छ्वसुरस्य च ।
दिव्यज्ञानेन तत्सर्वं ज्ञात्वा जामातृ चेष्टितम् ॥ ५० ॥
स्वां सुतां चोदयामास गच्छ तां मथुरां पुरीं ।
भोजनं गृह्य तत्रैव गच्छ त्वं भर्तृसन्निधौ ॥ ५१ ॥

उस समय मथुरा में कन्यापुर निवासी कुशिक राजा नित्य ही सत्र चला रहा था, जिसमें दो हजार ब्राह्मण भोजन करते थे । ब्राह्मणों की जूठन खाने से उस ब्राह्मणकुमार का उद्धार हुआ । चक्रतीर्थ में नित्य स्नान करता था । वह न भिक्षा माँगता था न भोजन के लिए जाता था ॥ ४६ ॥ अधिक समय बीत जाने पर श्वसुर को चिन्ता हुई, तब दिव्य ज्ञान से जामाता के कार्य का ज्ञान प्राप्त करके अपनी पुत्री को मथुरापुरी जाने के लिए प्रेरित किया कि भोजन लेकर अपने पति के समीप जाओ ॥ ५०-५१ ॥

दिव्यज्ञानेन च तदा नित्यं सा भर्तृसन्निधौ ।
दिने दिने गच्छति सा भर्तृभोजन कारणात् ॥ ५२ ॥
दिवसस्यावसाने तु भोजनं गृह्य गच्छति ।
भोजनं कुरुते नित्यं प्रियादत्तं वसुन्धरे ॥ ५३ ॥
पात्रं निक्षिप्य कुण्डे तु सत्रे वसति सर्वदा ।
एवं निवसतस्तस्य वर्षार्द्धं तु गतं तदा ॥ ५४ ॥
ततः कालेन महता तैः पृष्टः स द्विजोत्तम ।
कुत्र सन्तिष्ठसे नित्यं भोजनं कुरुषे कुतः ॥ ५५ ॥
कथयामास वृत्तान्तं तं सर्वं चात्मनो हि सः ।
ते श्रुत्वा ब्राह्मणाः सर्वे एकीभूता वसुन्धरे ॥ ५६ ॥

उस दिव्य ज्ञान के कारण वह प्रतिदिन भोजन लेकर पति के पास जाती थी ॥ ५२ ॥ संध्या के समय वह भोजन लेकर जाती थी । हे पृथ्वी ! वह उसका दिया हुआ भोजन कर लेता था ॥ ५३ ॥ पात्र को कुण्ड में रखकर सत्र में रहने लगा । इसी तरह रहते हुए छह मास व्यतीत हो गये ॥ ५४ ॥ कुछ समय उपरान्त ब्राह्मणों ने उससे पूछा -- तुम कहाँ रहते हो और कहाँ भोजन करते हो ॥ ५५ ॥ तब उसने अपना सारा वृत्तान्त सुनाया । सुनकर सभी ब्राह्मण एकत्र हुए ॥ ५६ ॥

इदमूचुस्ततो विप्राः शुद्धोऽसीति द्विजं प्रति ।
चक्रतीर्थप्रभावेण पापान्मुक्तः सनातनः ॥ ५७ ॥

अस्माकं वदनाच्चैव पुनः सिद्धोऽसि वै द्विज ।
ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा स द्विजो हृष्टमानसः ॥ ५८ ॥
स्नानार्थं तु ततः स्थानात् चक्रतीर्थं समागतः ।
गते तस्मिंस्तस्य भार्या भिक्षामादाय चागता ॥ ५९ ॥
सा तु हृष्टेन मनसा भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ।
भोजनं कुरु मे दत्तं हत्यां लक्ष्यामि ते गताम् ॥ ६० ॥
प्रियावचनमाकर्ण्य भर्तावचनमब्रवीत् ।
पुनराभाषितं ब्रूहि यदिदं भाषितं त्वया ॥ ६१ ॥
भर्तुर्वचनमाकर्ण्य पत्नी वचनमब्रवीत् ॥
न त्वं सम्भाषितः पूर्वं ब्रह्महत्यासमन्वितः ॥ ६२ ॥

और कहा हे विप्र ! तुम शुद्ध हो गये हो, चक्रतीर्थ के प्रभाव से सर्वथा पाप मुक्त हो गये हो ॥ ५७ ॥ हमारे वचनों से तुम पुनः सिद्ध हो गये हो, ब्राह्मणों के वचन सुनकर वह द्विज प्रसन्न हुआ ॥ ५८ ॥ वहाँ से स्नान करने हेतु चक्रतीर्थ पहुँचा । उसके जाने पर उसकी पत्नी भिक्षा लेकर आई ॥ ५९ ॥ और प्रसन्न मन से पति को कहने लगी, मेरा दिया हुआ भोजन ग्रहण करो । तुम्हारी ब्रह्म-हत्या का पाप दूर हो चुका है ॥ ६० ॥ पत्नी के वचन सुनकर विप्र ने कहा – जो कुछ अभी कहा उसको फिर से कहो ॥ ६१ ॥ पति के वचन सुनकर पत्नी बोली ब्रह्म-हत्या पाप से युक्त होने के कारण तुमसे पहले वार्तालाप नहीं किया था ॥ ६२ ॥

चक्रतीर्थप्रभावेण मुक्तोऽसि द्विजसत्तम ।
उत्तिष्ठ कान्त गच्छावः कल्पग्रामं सुशोभितम् ॥ ६३ ॥
तयासार्द्धं जगामाथ कल्पग्रामं द्विजोत्तमः ।
भद्रेश्वरनिमित्तं हि द्रव्यं च कथितं शुभम् ॥ ६४ ॥
नित्यं च भुञ्जते यत्र पात्रं द्रव्यसमर्पितम् ।
दृष्ट्वा भद्रेश्वरं देवं चक्रतीर्थे फलं लभेत् ॥ ६५ ॥
कल्पग्रामाच्छतगुणं चक्रतीर्थं वसुन्धरे ।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ६६ ॥
कल्पग्रामेण किं तस्य वाराणस्यां च वा शुभे ।
मथुरां तु समासाद्य यः कश्चिन्म्रियते भुवि ॥ ६७ ॥

अपि कीटः पतङ्गो वा जायते स चतुर्भुजः ॥ ६८ ॥

इति चक्रतीर्थ प्रभावोनाम एकादशोऽध्यायः ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! चक्रतीर्थ के प्रभाव से अब मुक्त हो गये हो। हे स्वामी ! उठो सुन्दर कल्पग्राम में चलें ॥ ६३ ॥ वह ब्राह्मण भार्या के साथ कल्पग्राम गया । इस तरह भद्रेश्वर के निमित्त मैंने यह कहा ॥ ६४ ॥ भद्रेश्वर का दर्शन करके चक्रतीर्थ का फल प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ हे पृथ्वी ! चक्रतीर्थ कल्पतीर्थ से सौगुना महत्वपूर्ण है । वहाँ दिन रात्रि उपवास करने से ब्रह्म-हत्या से प्राणी छूट जाता है ॥ ६६ ॥ कल्पग्राम से क्या प्रयोजन अथवा वाराणसी में मृत्यु प्राप्त करने से क्या लाभ ? मथुरा में जो मृत्यु प्राप्त करता है वह चाहे कीड़ा-मकोड़ा क्यों न हो, वह भी विष्णु रूप हो जाता है ।

चक्रतीर्थप्रभाव नामक एकादश अध्याय संपूर्ण ॥

द्वादशोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
बैकुण्ठतीर्थमासाद्य यद् वृत्तं हि पुरातनम् ॥ १ ॥
मिथिला या पुरी रम्या जनकेन च पालिता ।
मिथिलावासिनो लोकास्तीर्थयात्रां समागतः ॥ २ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि वसुन्धरे ।
स्नात्वा सौकरवे तीर्थे आयाता मथुरां पुरीम् ॥ ३ ॥
तेषां च भक्तिरुत्पन्ना मथुरां प्रति सुन्दरि ।
वैकुण्ठतीर्थमासाद्य सर्वे ते मनुजाः स्थिताः ॥ ४ ॥
तेषां तु ब्राह्मणः कश्चित् ब्रह्महत्यासु चिन्हितः ।
रुधिरस्य हि धारा च स्रवन्ती तस्य हस्ततः ॥ ५ ॥

हे वसुधे ! अब अन्य वृत्तान्त सुनाता हूँ । बैकुण्ठतीर्थ में पहुँचकर जो घटना घटित हुई, उसको सुनो ॥ १ ॥ मिथिला में जनक राजा के द्वारा पालित सुन्दर पुरी है । मिथिलावासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीर्थ यात्रा करते हुए सौकरतीर्थ में स्नान करके मथुरापुरी पहुँचे ॥ २-३ ॥ हे सुन्दरि ! मथुरा के प्रति उनमें भक्ति उत्पन्न हुई । वे सभी वैकुण्ठ तीर्थ पर स्थित हुए । उनमें से एक ब्राह्मण ब्रह्म-हत्या से चिह्नित था । उसके हाथ से रक्त की धारा गिरती थी ॥ ४-५ ॥

प्रत्यक्षा दृश्यते सर्वैर्ब्रह्महत्यास्वरूपिणी ।
सर्वतीर्थप्लुतस्यापि ब्राह्मणस्य हि सा तदा ॥ ६ ॥
न गता पूर्वमेवासीद् वैकुण्ठे स्नानमाचरेत् ।
न सा वै दृश्यते धारा ततस्ते विस्मयं गताः ॥ ७ ॥
किमेतत्किमिति प्राहुर्धारां प्रति वसुन्धरे ।

देवो ब्राह्मणरूपेण लोकान्सर्वान् हि पृच्छति ॥ ८ ॥
केन कारणदोषेण धारा त्यक्त्वा गता द्विजम् ।
तत्सर्वं कथयामासुर्ब्राह्मणस्य विचेष्टितम् ॥ ९ ॥
वैकुण्ठे तु निमग्नोऽयं ब्रह्महत्या गता ततः ।
विस्मयो नात्र कर्तव्यस्तीर्थस्येदं महत्फलम् ॥ १० ॥

जिसको सभी लोग देखते थे । समस्त तीर्थों में स्नान करने से भी वह दूर नहीं हुई । वैकुण्ठतीर्थ में स्नान करने के बाद वह दिखाई नहीं दी, अतः सभी साथी आश्चर्यान्वित हुए ॥ ६-७ ॥ हे वसुधे ! यह कैसे हुआ, कैसे हुआ ? कहने लगे । तभी ब्राह्मण रूप में दिव्य पुरुष लोगों से पूछने लगा, किस कारण से यह धारा ब्राह्मण को छोड़ गई ? उन्होंने ब्राह्मण के कार्य के संबंध में सब कुछ बताया कि वैकुण्ठ तीर्थ में डुबकी लगाने से इसका ब्रह्म-हत्या का दोष दूर हो गया । इस तीर्थ का यह पुण्यफल है । इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए ॥ ८-१० ॥

इत्युक्तस्तैर्देवदेवस्तत्रैवान्तरधीयत् ।
एष प्रभावस्तीर्थस्य वैकुण्ठस्य वसुन्धरे ॥ ११ ॥
वैकुण्ठतीर्थे यः स्नाति मुच्यते सर्वपातकैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि असिकुंडेऽतिपुण्यदे ।
नाम्ना गन्धर्वकुण्डं तु तीर्थाना तीर्थमुत्तमम् ॥ १३ ॥
तत्र स्नातो नरो देवि गन्धर्वैः सह मोदते ।
तत्र यो मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥ १४ ॥
विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम् ।
इदं पद्मं महाभागे सर्वेषां मुक्तिदायि च ॥ १५ ॥

यह कहते ही दिव्य पुरुष अन्तर्धान हो गया । हे पृथ्वी ! इस वैकुण्ठ तीर्थ का यह प्रभाव है ॥ ११ ॥ जो यहाँ स्नान करता है, सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् अत्यधिक पुण्यमय असिकुण्ड के संबंध में बताता हूँ । उसके साथ-साथ एक गन्धर्वकुण्ड है, जो सब तीर्थों में उत्तम है । यहाँ स्नान करने वाला प्राणी गन्धर्वों के साथ रहकर हर्षित होता है । वहाँ प्राण त्याग करने वाला मेरे लोक को प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ मेरा मथुरा-मण्डल बीस योजन में स्थित है । यह एक कमल है, जो सबको मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥ १५ ॥

कर्णिकायां स्थितो देवि केशवः क्लेशनाशनः ।
कर्णिकायां मृता ये तु तेऽमरामुक्तिभागिनः ॥ १६ ॥
तत्र मध्ये मृता ये तु तेषां मुक्तिर्वसुन्धरे ।
पश्चिमेन हरिं देवं गोवर्द्धननिवासिनम् ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं किं मनः परितप्यते ।
उत्तरेण तु गोविन्दं दृष्ट्वा देवं परं शुभम् ॥ १८ ॥
नासौ पतति संसारे यावदाभूत्संप्लवम् ।
विश्रान्तिसंज्ञके देवं पूर्वपत्रे व्यवस्थितम् ॥ १९ ॥
यं दृष्ट्वा तु नरो याति मुक्तिं नास्त्यत्र संशयः ।
दक्षिणेन तु मां विद्धि प्रतिमां दिव्यरूपिणीम् ॥ २० ॥

उस कमल की कार्णिका में कष्टनिवारक केशव देव स्थित हैं । उस कर्णिका में मरने वाला प्राणी अमर मुक्ति का पात्र बनता है ॥ १६ ॥ मथुरा में मृत सभी प्राणियों की मुक्ति होती है । इसके पश्चिम में गोवर्द्धन में निवास करने वाले देवाधिदेव हरि का दर्शन करके मन संताप रहित हो जाता है । उत्तर में परम कल्याणकारी गोविन्ददेव का दर्शन करके प्राणी प्रलयकाल तक जन्म-मरण-चक्र में नहीं फंसता । विश्रान्ति तीर्थ इस कमल में पूर्वपत्र में स्थित है, जिसके दर्शन करके प्राणी निस्संदेह मुक्त हो जाता है । दक्षिण में मेरी दिव्य रूप वाली प्रतिमा को जानो ॥ १७-२० ॥

महाकायां सुरूपां च केशवाकारसन्निभाम् ।
तां दृष्ट्वा मनुजो देवि ब्रह्मणा सह मोदते ॥ २१ ॥
कृतेयुगे तु राजासीन्मान्धाता नाम नामतः ।
तेनाहं तोषितो देवि भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ २२ ॥
तस्य तुष्टेन हि मया प्रतिमेयं समर्पिता ।
तेनेयं पूजिता नित्यमात्ममुक्तिमभीप्सिता ॥ २३ ॥
यदा तु मथुरां प्राप्य लवणोऽयं निपातितः ।
तदैव प्रतिमा दिव्या मथुरायां व्यवस्थिता ॥ २४ ॥
पुण्येयं प्रतिमा दिव्या तैजसीदिव्यरूपिणी ।
कपिलो नाम विप्रर्षिर्मम भक्तिपरायणः ॥ २५ ॥

सुन्दर केशव आकृति के समान उस विशालाकृति प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य ब्रह्मलोक का सुख प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ सतयुग में मान्धाता राजा हुआ, जिसने भक्तियुक्तचित्त से मुझे प्रसन्न किया । उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर मैंने यह प्रतिमा उसको दी थी । अपनी मुक्ति की आकांक्षा से वह नित्य इसकी पूजा करता था ॥ २२-२३ ॥ जब मथुरा में लवणासुर को मारा गया, तभी इस दिव्य प्रतिमा की स्थापना हुई ॥ २४ ॥ यह प्रतिमा पवित्र, तेज सम्पन्न और दिव्य है । मेरी भक्ति में संलग्न कपिल नामक ब्रह्मर्षि हुए ॥ २५ ॥

मनसा निर्मिता तेन वाराही प्रतिमा शुभा ।
कपिलो ध्यायते नित्यं अर्चति स्म दिने-दिने ॥ २६ ॥
इन्द्रेणाराधितो देवि कपिलो मुनिसत्तमः ।
तस्य प्रीतो ददौ देवं वाराहं दिव्यरूपिणम् ॥ २७ ॥
देवे लब्धे वरारोहे शक्रो हर्षसमन्वितः ।
ध्यायति स्म सदा देवं पूजां कृत्वा हि भक्तितः ॥ २८ ॥
इन्द्रेण तु सदा प्राप्तं दिव्यं ज्ञानमुत्तमम् ।
ततः कालेन महता रावणो नाम राक्षसः ॥ २९ ॥
इन्द्रलोकं गतः सोऽथ स्वर्गं जेतुं महाबलः ।
शक्रेण सह संगम्य ततो युद्धम् प्रवर्तितम् ॥ ३० ॥

उन्होंने बड़े मनोयोग से सुन्दर वाराह-प्रतिमा बनाई और नित्य प्रति उसका ध्यान और पूजन करने लगे ॥ २६ ॥ इन्द्र ने मुनि श्रेष्ठ कपिल की आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने वह प्रतिमा इन्द्र को दे दी ॥ २७ ॥ उस प्रतिमा को प्राप्त कर हे पृथ्वी ! इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और नित्य ही भक्तिपूर्वक पूजा करके ध्यान करने लगा ॥ २८ ॥ फलतः इसको दिव्य-ज्ञान प्राप्त हुआ । इसके बाद रावण नामक महाबली राक्षस हुआ ॥ २९ ॥ वह स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने हेतु इन्द्रलोक गया और इन्द्र के साथ युद्ध करने लगा ॥ ३० ॥

रावणेन जिता देवाः शक्रश्चैव महाबलः ।
बद्ध्वा चेन्द्रं महाबाहुं शक्रस्य भवनं गतः ॥ ३१ ॥
प्रविश्य रावणस्तत्र गृहे रत्नविभूषिते ।
दृष्ट्वा कपिलवाराहं शिरसा धरणीं गतः ॥ ३२ ॥
तेन सम्मोहितो देवि रावणो नाम राक्षसः ।
त्रातुमर्हसि मे देव धरणीधर माधव ॥ ३३ ॥

दामोदर हृषीकेश हिरण्याक्षविदारण ।
वेदगर्भ नमस्तेऽस्तु वासुदेव नमोऽस्तुते ॥ ३४ ॥
कूर्मरूप नमस्तेऽस्तु नारायण नमोऽस्तु ते ।
मत्स्यरूपधरं देवं मधुकैटभनाशिनम् ॥ ३५ ॥

रावण ने देवताओं और इन्द्र को जीत लिया तथा पराक्रमी इन्द्र को बाँधकर इन्द्र भवन में पहुँचा ॥ ३१ ॥ रत्नों से सुसज्जित उस गृह में प्रवेश करके वहाँ कपिल-वाराह प्रतिमा को देखकर पृथ्वी पर मस्तक टिकाया ॥ ३२ ॥ उस प्रतिमा के दर्शन से राक्षस रावण मुग्ध हो गया तथा प्रार्थना करने लगा, हे देव हे धरणीधर ! हे माधव ! आप मेरी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ हे दामोदर ! हे हृषीकेश ! हे हिरण्याक्ष विनाशक ! हे वेदगर्भ हे वासुदेव ! आपको नसम्कार है ॥ ३४ ॥ हे कच्छपरूपधारी हे नारायण ! हे मत्स्य रूपधारी ! हे मधुकैटभ के विनाशक ! आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

निरीक्षितुं न शक्नोमि प्रष्टुं चैव गुणव्रत ।
देवदेव नमस्तुभ्यं भक्तानामभयप्रद ॥ ३६ ॥
मम त्वं भक्तिनम्रस्य प्रसादं कुरु सर्वदा ।
इति स्तुतो रावणेन देवदेव जगत्पतिः ॥ ३७ ॥
सौम्यरूपोऽभवद्देवो लोकनाथो जनार्दनः ।
सन्निधानमनुप्राप्य पुष्पकारोहणोत्सुकः ॥ ३८ ॥
तदुद्धर्तुं न शक्नोति रावणो विस्मयं गतः ।
शंकरेण पुरा सार्द्धं कैलासस्तु मयोद्धृतः ॥ ३९ ॥
देव त्वं स्वल्पकायोऽसि नाहमुद्धरणक्षमः ।
प्रसीद देवदेवेश सुरनाथ नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥

हे गुणव्रत ! मैं आपका दर्शन करने में समर्थ नहीं हूँ, न कुछ पूछने की शक्ति मुझमें है । हे भक्तों को अभय देने वाले आपको नमस्कार है॥ ३६ ॥ आपकी भक्ति से विनम्र मुझ पर आप कृपा करें । इस प्रकार रावण ने जगत् के स्वामी की स्तुति की ॥ ३७ ॥ लोकपालक श्रीकृष्ण ने सौम्य रूप धारण कर लिया । पुष्पक विमान पर चढ़कर उस राक्षस के पास आये ॥ ३८ ॥ रावण ने प्रतिमा को उठाना चाहा, किन्तु न उठा पाने के कारण आश्चर्य में पड़ गया । कहने लगा – हे देव ! मैंने पहले शिव सहित कैलाश पर्वत को

उठा लिया था । लेकिन लघु काया वाले आपको उठाने में समर्थ नहीं हूँ । हे देवेश ! हे सुरनाथ ! आप कृपा करें, आपको नमस्कार है ॥ ३९-४० ॥

अहं त्वां नेतुमिच्छामि पुरीं लंकामनुत्तमाम् ॥ ४१ ॥

श्री वाराह उवाच –

अवैष्णवोऽसि रक्षस्त्वं कुतो भक्तिस्तवेदृशी ।
कपिलस्य वचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥
त्वद्दर्शनात्समुत्पन्ना भक्तिरव्यभिचारिणी ।
महात्मंस्त्वां नयिष्यामि देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥
भक्तिमुद्वहतस्तस्य लघुवेषोऽभवत्तदा ।
पुष्पके तु समारोप्य देवं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ४४ ॥
आनयामास लंकायां स्थापयित्वा स्वके गृहे ।
तदास्थितोऽहं लंकायां रावणेन प्रपूजितः ॥ ४५ ॥

मैं आपको अपनी उत्तमपुरी लंका में ले जाना चाहता हूँ ॥ ४१ ॥ वाराह भगवान बोले – हे राक्षस ! तुम वैष्णव नहीं हो । तुम्हें ऐसी भक्ति कैसे प्राप्त हुई ? कपिल-वाराह के वचन सुनकर रावण बोला – आपके दर्शन से ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति प्राप्त हुई है । हे महात्मन् ! मैं आपको ले जाऊँगा । आपको नमस्कार है ॥ ४२-४३ ॥ उसकी इस भक्ति को स्वीकार करके मैंने अपनी प्रतिमा को हल्का कर लिया, जिससे वह रावण पुष्पक विमान में रखकर ले जा सका ॥ ४४ ॥ लंका में लाकर अपने भवन में उस प्रतिमा को प्रतिष्ठित करके प्रतिदिन वह पूजा करने लगा।मैं वहाँ रावण द्वारा पूजित होकर स्थित हूँ ॥ ४५ ॥

अयोध्याधिपति रामो हन्तुं राक्षसपुङ्गवम् ।
गतोऽसौ विक्रमेणैव हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥ ४६ ॥
विभीषण स्वलंकाया आधिपत्येऽभिषेचितः ।
विभीषणेन रामस्य सर्वस्वं च निवेदितम् ॥ ४७ ॥

श्री राम उवाच –

अनेन नास्ति मे कार्यं तव रक्षो विभीषण ।
देवो मे दीयतां रक्षः शक्रलोकाद्य आगतः ॥ ४८ ॥

अहन्यहनि पूजामि देवं वाराहरूपिणम् ।
अयोध्यां चैव नेष्यामि त्वया दत्तं हि राक्षस ॥ ४६ ॥
ततः समर्पयामास कपिलं दिव्यरूपिणम् ।
पुष्पके तु समारोप्य नीतवान्नगरीं प्रति ॥ ५० ॥

अयोध्या के राजा श्रीराम रावण को मारने के लिए लङ्का गये, वहाँ पराक्रमपूर्वक रावण को मारकर लंका के राजा के रूप में विभीषण का अभिषेक किया । विभीषण ने श्रीराम को सर्वस्व अर्पित किया ॥ ४६-४७ ॥ तब श्रीराम ने कहा – यह सब कुछ तुम्हारा है, इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । हे राक्षस ! इन्द्रलोक से जो देव प्रतिमा आई है, केवल वह मुझे दे दो, प्रतिदिन उसकी पूजा करना चाहूँगा । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त उस प्रतिमा को अयोध्या ले जाऊँगा ॥ ४८-४९ ॥ तब विभीषण ने उस दिव्य प्रतिमा को राम को समर्पित किया । राम पुष्पक विमान में रखकर मूर्ति को अयोध्या ले गये ॥ ५० ॥

अयोध्यायां स्थापयित्वा पूजयामास तं तदा ।
गतं वर्षसहस्रं तु दशोत्तमरमतः परम् ॥ ५१ ॥
लवणस्य वधार्थं हि शत्रुघ्नं प्रेषयत्तदा ।
कृतप्रणामः शत्रुघ्नो राघवाय महात्मने ॥ ५२ ॥
चतुरंगबलोपेतो जगाम मथुरां प्रति ।
गत्वा तु राक्षसश्रेष्ठं लवणं रौद्ररूपिणम् ॥ ५३ ॥
घातयित्वा तु शत्रुघ्नः प्रविश्य मथुरां पुरीम् ।
ब्राह्मणान्स्थापयित्वा तु मया तुल्यान्महौजसः ॥ ५४ ॥
षड्विंशतिसहस्राणि वेदवेदाङ्गपारगान् ।
अनृचो माथुरो यत्र चतुर्वेदस्तथापरः ॥ ५५ ॥

अयोध्या में प्रतिमा की स्थापना करके पूजन करने लगे । इस प्रकार दस हजार वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ५१ ॥ लवणासुर को मारने के लिए शत्रुघ्न को भेजा । शत्रुघ्न ने श्रीराम को प्रणाम करके चतुरंगिणी सेना के साथ मथुरा की ओर प्रस्थान किया । वहाँ जाकर भयङ्कर आकृति वाले राक्षस लवण को मारकर तेजस्वी शत्रुघ्न ने वेदवेदाङ्गों में पारङ्गत २६ सहस्र ब्राह्मणों को बसाया । जहाँ के निवासी वेद के ज्ञाता नहीं थे, वही अब चारों वेदों के ज्ञाता हो गये ॥ ५२-५५ ॥

एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजितः ।
लवणस्य यथावृत्तं कथितं ते वसुन्धरे ॥ ५६ ॥

लवणस्य वधं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
वरं वरय शत्रुघ्न यत्ते मनसि रोचते ॥ ५७ ॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ।
यदि तुष्टोऽसि मे देव वरार्हो यदि वाप्यहम् ॥ ५८ ॥
दीयतां मम देवोऽयं यदि मे वरदो भवान् ।
शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५९ ॥
नय शत्रुघ्न देवं त्वं दिव्यं वराहरूपिणम् ।
धन्याऽसौ मण्डलीलोके धन्या सा मथुरापुरी ॥ ६० ॥

जहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने पर एक करोड़ ब्राह्मण भोजन का फल प्राप्त होने लगा । हे वसुन्धरे ! इस प्रकार लवण का वृत्तान्त तुम्हें सुनाया ॥ ५६ ॥ लवण के वध को सुनकर श्रीराम बोले – हे शत्रुघ्न ! जो चाहो वह वर माँग लो ॥ ५७ ॥ श्रीराम के वाक्य सुनकर शत्रुघ्न बोले – हे देव यदि आप मुझ पर संतुष्ट हैं और मैं वर के योग्य हूँ, तो आप मुझे यह प्रतिमा दे दें । श्रीराम ने शत्रुघ्न के कथनानुसार वह दिव्य प्रतिमा प्रदान कर दी और कहा – 'इस संसार में तुम्हारे अनुगत धन्य हैं और मथुरापुरी धन्य है' ॥ ५८-६० ॥

धन्यास्ते माथुरा लोकाः पश्यन्ति कपिलं सदा ।
दृष्टः स्पृष्टः सदा ध्यातः स्नापितश्च दिने-दिने ॥ ६१ ॥
अनुलिप्तश्च शत्रुघ्न सर्वपापं व्यपोहति ।
पूजितः स्नापितो देवो दृष्टो यैस्तु दिनेदिने ॥ ६२ ॥
सर्वं हरति वै पापं मोक्षं वै प्रयच्छति ।
इत्युक्त्वा राघवस्तस्मै देवं प्रादाद्वसुन्धरे ॥ ६३ ॥
देवमादाय शत्रुघ्नो जगाम मथुरां पुरीम् ।
ब्राह्मणं स्थापयित्वा तु आगच्छन्मम सन्निधौ ॥ ६४ ॥
तत्र मध्ये तु संस्थाप्य पूजयामास राघवः ।
अनेन क्रमयोगेन मथुरायां स्थितः प्रभुः ॥ ६५ ॥

वे मथुरा निवासी धन्य हैं, जो कपिल-वाराह का सदा दर्शन करेंगे । हे शत्रुघ्न ! जो प्राणी इनका दर्शन, स्पर्श, ध्यान, स्नान और अनुलेपन करेगा, उसके सब पाप नष्ट हो जायेंगे । जो प्रतिदिन इनका पूजन, स्नान और दर्शन करेगा, उसके सब पाप हरकर मोक्ष प्रदान करेंगे ।' यह कहकर श्रीराम ने वह देव प्रतिमा शत्रुघ्न

को प्रदान कर दी ॥ ६१-६३ ॥ शत्रुघ्न इस प्रतिमा को लेकर मथुरा पहुँचे, वहाँ ब्राह्मण को नियुक्त करके मेरे समीप आये ॥ ६४ ॥ वहाँ मध्य में स्थापित करके शत्रुघ्न ने पूजन किया। इस प्रकार कपिल-वाराह देव मथुरा में स्थित हुए ॥ ६५ ॥

गयायां पिण्डदानेन यत्फलं ज्येष्ठपुष्करे ।
तत्फलं समवाप्नोति श्वेतं दृष्ट्वा सदा नरः ॥ ६६ ॥
विश्रान्तिसंज्ञके तद्वत् गोविन्दे च तथा हरौ ।
केशवे दीर्घविष्णौ च तदेव फलमश्नुते ॥ ६७ ॥
मध्याह्ने मामकं तेजो दीर्घाविष्णौ व्यवस्थितम् ।
केशवे मामकं तेजो दिनभागे चतुर्थके ॥ ६८ ॥
एषा विद्या पुरा देवि नित्यकालं सुगोपिता ।
भक्ता त्वं मम शिष्या च कथिता ते वसुन्धरे ॥ ६६ ॥

इति कपिलवाराहमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

'गया' में तथा ज्येष्ठ मास में पुष्कर में पिण्डदान करने से वही फल प्राप्त होता है, जो श्वेत वाराह के दर्शन से मिलता है ॥ ६६ ॥ वही फल विश्रान्ति तीर्थ, गोविन्द, हरि, केशव और दीर्घविष्णु के दर्शन से मिलता है ॥ ६७ ॥ मध्याह्नकाल में मेरा तेज दीर्घविष्णु में, दिन के चतुर्थ भाग (सायंकाल) में केशव में विद्यमान रहता है ॥ ६८ ॥ हे वसुन्धरे ! तुम मेरी भक्त और शिष्या हो, अतः यह परम गोपनीय (रहस्यमय) प्राचीन विद्या तुम्हें बताई है ॥ ६६ ॥

कपिलवाराह माहात्म्य नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण ।

❀ ❀ ❀

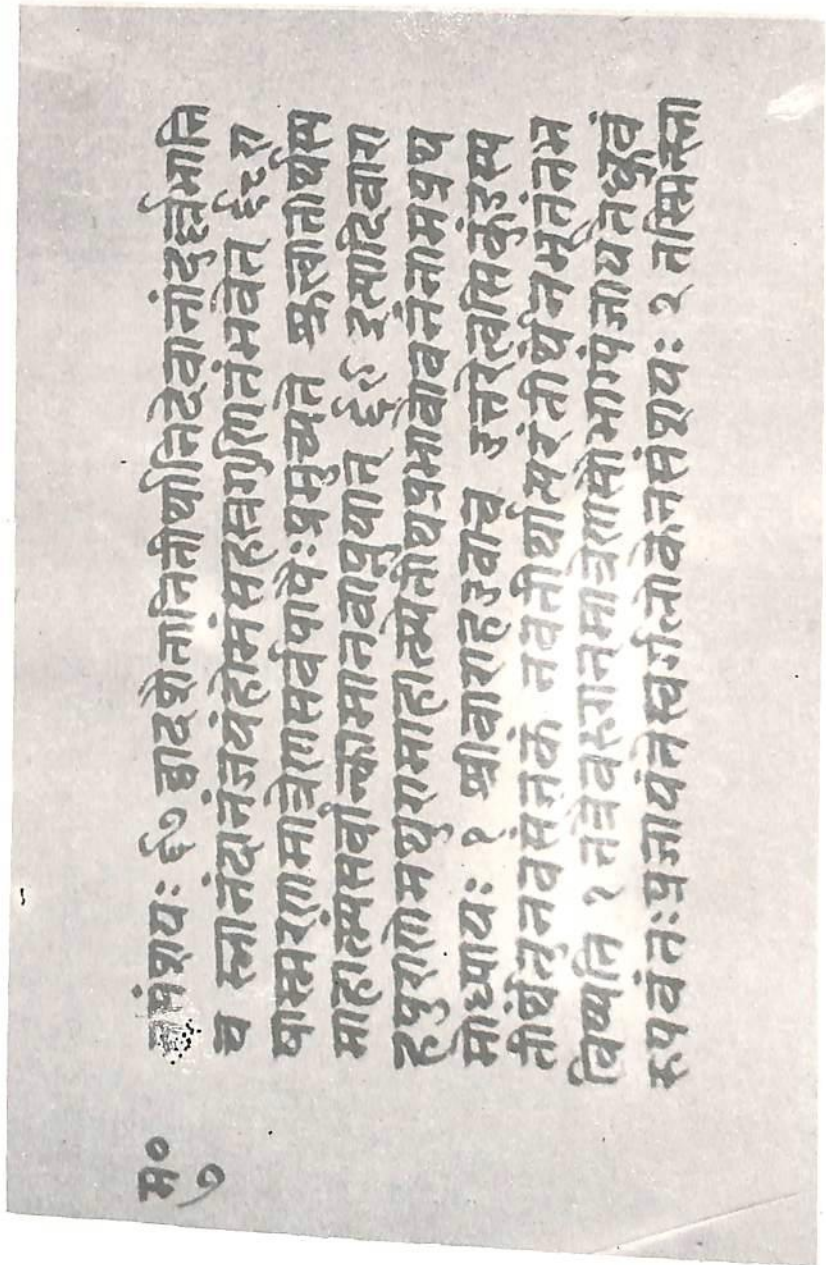

मथुरा-माहात्म्य पत्राङ्क ७ रैक्टो

त्रयोदशोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

अस्ति गोवर्द्धनं नाम क्षेत्रं परं दुर्लभम् ।
मथुरापश्चिमे भागे अदूराद्योजनद्वयम् ॥ १ ॥
ह्रदं तत्र महाभागे द्रुमगुल्मलतायुतम् ।
चत्वारि तत्र तीर्थानि पुण्यानि च शुभानि च ॥ २ ॥
ऐन्द्रपूर्वेण पार्श्वेन यमतीर्थं तु दक्षिणे ।
पश्चिमे वारुणं तीर्थं कौबेरं चोत्तरेण तु ॥ ३ ॥
तेषां मध्ये स्थितो भद्रे क्रीडयिष्ये यदृच्छया ।
तत्र वै शक्रतीर्थे तु स्नानं कुर्याद् दृढ़व्रतः ॥ ४ ॥
मोदते शक्रलोके तु सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
दक्षिणे यमतीर्थे तु स्नानं कुर्याद्यथाविधिः ॥ ५ ॥

वाराह भगवान् बोले – मथुरा के पश्चिम में दो योजन में विस्तृत गोवर्धन नामक अति दुर्लभ क्षेत्र है ॥ १ ॥ हे महाभागे ! वहाँ पर वृक्षों, झाड़ियों और लताओं से युक्त एक तालाब है । वहीं पर पुण्यमय और मंगलकारी चार तीर्थ हैं ॥ २ ॥ पूर्वी भाग में इन्द्रतीर्थ, दक्षिण में यमतीर्थ, पश्चिम में वरुण तीर्थ और उत्तर में कुबेर तीर्थ विद्यमान हैं ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! इन तीर्थों के मध्य में स्थित होकर इच्छानुसार क्रीड़ायें (लीलाएं) करता हूँ । नियमपूर्वक जो प्राणी इन्द्रतीर्थ में स्नान करता है, वह सभी दुःखों से रहित होकर इन्द्रलोक का सुख भोगता है । दक्षिण में स्थित यम तीर्थ में विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

यमस्य भवनं गत्वा मोदते कृतनिश्चयः ।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् लोभमोहविवर्जितः ॥ ६ ॥
यमलोकं परित्यज्य मम लोकं स गच्छति ।
तत्रैव वारुणं तीर्थमासाद्य स्नानमाचरेत् ॥ ७ ॥
वारुणं भवनं गत्वा मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।

अथात्र मुञ्चते प्राणान्कामक्रोधविवर्जितः ॥ ८ ॥
वारुणं लोकमृत्सृज्य ममलोकं स गच्छति ।
तत्र मध्ये च यः स्नाति क्रीडते स मया सह ॥ ९ ॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ।
अन्नकूटं ततः प्राप्य तस्य कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ १० ॥

दृढ़ निश्चयी व्यक्ति यम के भवन में जाकर सुख प्राप्त करता है । जो इस स्थान पर लोभमोह से रहित प्राणी प्राण त्याग करता है वह यमलोक को छोड़कर मेरे लोक में जाता है वहीं पर स्थित वरुण तीर्थ मैं स्नान करना चाहिए, इसके फलस्वरूप वरुणालय में जाकर सब पापों से मुक्ति होती है । क्रोध से रहित जो प्राणी यहाँ मृत्यु प्राप्त करता है, वह वरुण लोक को छोड़कर मेरे लोक में जाता है । इन स्थानों के मध्य में जो स्नान करता है, मेरे साथ क्रीड़ा करता है तथा मृत्यु प्राप्त करता है, उसे मेरा लोक प्राप्त होता है । इसके पश्चात् 'अन्नकूट' नामक स्थान में पहुँचकर प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥ ६-१० ॥

न तस्य पुनरावृत्तिः देवि सत्यं ब्रवीमि ते ।
स्नात्वा मानसगङ्गायां दृष्ट्वा गोवर्द्धने हरिम् ॥ ११ ॥
अन्नकूटं परिक्रम्य किं पुनः परिशोचति ।
सोमवारे त्वमायां वै प्राप्य गोवर्द्धनं गिरिम् ॥ १२ ॥
दत्त्वा पिण्डं पितृभ्यश्च राजसूयफलं भवेत् ।
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं प्राप्यतेनरैः ॥ १३ ॥
तत्फलं प्राप्यते तत्र नात्र कार्या विचारणा ।
गोवर्द्धनं परिक्रम्य दृष्ट्वा देवं परं हरिम् ॥ १४ ॥
राजसूयाश्वमेधानांफलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १५ ॥

पृथिव्युवाच —

परिक्रमोऽन्नकूटस्य विधिना क्रियते कथम् ।
प्रभावगुणमाहात्म्यं तद्भवान्वक्तुमर्हसि ॥ १६ ॥

हे देवि ! मैं सत्य कहता हूँ कि उस प्राणी का पुनरागमन नहीं होता अर्थात् जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है । मानसी गङ्गा में स्नान करके और गोवर्धन में हरि के दर्शन करके, अन्नकूट की परिक्रमा करके क्या शेष रह जाता है । सोमवती अमावस्या को गोवर्धन पर्वत पर जाकर पितरों को पिण्डदान

करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है । गया में पिण्डदान का जो फल है, वही फल यहाँ प्राप्त होता है । यहाँ किसी प्रकार का सोच विचार नहीं करना चाहिए । गोवर्धन की परिक्रमा करके परं हरि के दर्शन करके निस्संदेह राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है ॥ ११-१५ ॥ पृथ्वी ने कहा 'अन्नकूट क्षेत्र' की परिक्रमा किस विधि से करनी चाहिए, उसका प्रभाव और महत्व क्या है, यह आप बतायें ॥ १६ ॥

श्री वाराह उवाच —

मासि भाद्रपदे या तु शुक्ला चैकादशी शुभा ।
गोवर्द्धने सोपवासः कुर्यात्तत्र प्रदक्षिणाम् ॥ १७ ॥
स्नात्वा मानसगंगायां प्रभाते उदितेरवौ ।
गोवर्द्धनं प्रसाद्यैवं हरिं चाचलमूर्द्धनि ॥ १८ ॥
पुण्डरीकं ततो गच्छेत् कुण्डे स्नात्वा विधानतः ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य पुण्डरीकमथार्च्य च ॥ १९ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः ।
कुण्डं चाप्सरसं नाम प्रसन्नसलिलाशयम् ॥ २० ॥
तत्र स्नानं तर्पणं च कृत्वा फलमवाप्नुयात् ।
राजसूयाश्वमेधानां धूतपाप्मा न संशयः ॥ २१ ॥

वाराह भगवान् बोले — भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की एकादशी को व्रत रहकर गोवर्धन की परिक्रमा करनी चाहिए ॥ १७ ॥ प्रातःकाल सूर्योदय होने पर मानसी गंगा में स्नान करके पर्वत शीर्ष पर स्थित श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् पुण्डरीक तीर्थ में जाकर वहाँ स्थित कुण्ड में स्नान करके देवताओं और पितरों का भलीभाँति पूजन करके भगवान् पुण्डरीक की अर्चना करके प्राणी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है ॥ १९-२० ॥ स्वच्छ जल से भरे हुए 'अप्सरा कुंड' में स्नान और तर्पण करके फल प्राप्त करना चाहिए । इसके प्रभाव से धूतपाप को निसंदेह राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है ॥ २१ ॥

तीर्थं संकर्षणं नाम्ना बलभद्रेण रक्षितम् ।
गोहत्या पूर्वसंलग्ना उत्तीर्णा तत्र दूरतः ॥ २२ ॥
स्नानाद् गच्छति सा क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ।
अन्नकूटस्य सान्निध्ये तीर्थं शक्रविनिर्मितम् ॥ २३ ॥

तत्र कृष्णेन पूजार्थं इन्द्रस्य विहतो मखः ।
महदिन्द्रस्य चोत्थानं भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ॥ २४ ॥
कृत्वा तुष्टिकरान् साक्षात् इन्द्रेण सह संकथा ।
इन्द्रस्य वर्षतोऽत्यन्तं तासां पीडाकरं जलम् ॥ २५ ॥
तासां गवां रक्षणाय धृतो गिरिवरस्तदा ।
सोऽन्नकूट इतिख्यातः सर्वतः शक्रपूजितः ॥ २६ ॥

बलराम जी से रक्षित संकर्षण नामक तीर्थ में स्नान करने से पहले से संलग्न गोहत्या के पाप से मुक्ति हो जाती है । अन्नकूट के समीप इन्द्र के द्वारा निर्मित तीर्थ है, यहाँ श्रीकृष्ण ने इन्द्र की पूजा के लिए होने वाले यज्ञ का निषेध किया । इस यज्ञ हेतु भोज्य पदार्थों का ऊँचा ढेर लग गया ॥ २२-२४ ॥ कृष्ण का इन्द्र के साथ प्रत्यक्ष विवाद हुआ । इन्द्र ने उनको पीड़ित करने के लिए घनघोर जल वर्षा की ॥ २५ ॥ वहाँ के निवासियों और गायों की रक्षा के लिए कृष्ण ने पर्वत उठा लिया । अतः इन्द्र के द्वारा पूजित अन्नकूट के नाम से विख्यात हुआ ॥ २६ ॥

देवा-देव्यस्तथा गावो ऋषिभिश्च समन्विताः ।
पूजितास्तर्पिताः श्रेष्ठाः श्रमतो विष्णुना पुरा ॥ २७ ॥
तस्मिन् स्थाने तर्पणेन शतक्रतुफलं लभेत् ।
ततः कदम्बखण्डाख्यं कुण्डं तु विमलोदकम् ॥ २८ ॥
स्नात्वा पितॄन् समभ्यर्च्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
ततो गच्छेद्देवगिरिं शतबाहुसमुच्छ्रितम् ॥ २९ ॥
यत्र स्नानाद्दर्शनाच्च वाजपेयफलं लभेत् ।
महादेवं ततो दृष्ट्वा गत्वा ध्यात्वाफलं लभेत् ॥ ३० ॥
कुण्डे स्नात्वा पितॄंस्तर्प्य कृतकृत्यो दिवं व्रजेत् ।
गंगायाश्चोत्तरं यावद्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ३१ ॥

पहले विष्णु भगवान् ने व्यवस्थापूर्वक देवी-देवताओं, गायों तथा ऋषियों सहित सभी श्रेष्ठ प्राणियों का पूजन, तर्पण किया । उस स्थान पर तर्पण करने से सौ यज्ञों का फल मिलता है । उसके बाद स्वच्छ जल वाला कदम्ब कुंड है । यहाँ स्नान करके पितृगणों का तर्पण करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । तत्पश्चात् सौ हाथ ऊँचे गोवर्धन देव पर्वत पर जायें, जहाँ स्नान और दर्शन से बाजपेय यज्ञ का फल

मिलता है । वहाँ से आगे महादेव का दर्शन और ध्यान करके फल प्राप्त करना चाहिए ॥ २७-३० ॥ कुण्ड में स्नान करके पितरों का तर्पण करके धन्य होकर स्वर्ग-प्राप्त करे । मानसी गंगा के उत्तरी तट पर चक्रधारी देवेश्वर का ॥ ३१ ॥

अरिष्टेन समं यत्र महद्युद्धं प्रवर्तितम् ।
घातयित्वा ततश्चेमयरिष्टं वृषरूपिणम् ॥ ३२ ॥
कोपेन पार्ष्णिघातेन मह्यां तीर्थं प्रवर्तितम् ।
वृषभस्य वधाज्ज्ञेयं तीर्थं सुमहदद्भुतम् ॥ ३३ ॥
स्नातस्तत्र तदा कृष्णो वृषं हत्वा महासुरम् ।
वृषहत्या समायुक्तः कृष्णश्चिन्तान्वितोऽभवत् ॥ ३४ ॥
वृषो हतो मया चायमरिष्टः पापपुरुषः ।
तत्र राधासमाश्लिष्य कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ ३५ ॥
स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थमदूरतः ।
राधाकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३६ ॥

अरिष्टासुर के साथ घोर युद्ध हुआ । वृषरूपधारी उस अरिष्ट का वध किया । क्रोधपूर्वक एड़ी के प्रहार से तीर्थ बना । वृषभ के वध से इसको अद्भुत और महान् तीर्थ के रूप में जानना चाहिए ॥ ३२-३३ ॥ अरिष्टासुर को मारकर कृष्ण ने वहीं स्नान किया । वृष हत्या के कारण श्रीकृष्ण अत्यधिक चिंतित हुए ॥ ३४ ॥ पापी अरिष्ट जो वृष रूप में था, मैंने मार दिया । तब निष्पाप श्रीकृष्ण का राधा ने आलिङ्गन करके अपने नाम से कुंड का निर्माण किया । सभी पापों को नष्ट करने वाला, कल्याणप्रद यह कुंड 'राधाकुण्ड' नाम से विख्यात हुआ ॥ ३५-३६ ॥

अरिष्टराधाकुण्डाभ्यां स्नानात्फलमवाप्नुयात् ।
राजसूयाश्वमेधानां नात्र कार्या विचारणा ॥ ३७ ॥
गौनरब्रह्महत्यायाः पापं क्षिप्रं विनश्यति ।
तीर्थं हि मोक्षराजाख्यं नृणां मुक्तिप्रदायकम् ॥ ३८ ॥
यस्य दर्शनमात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते ।
इन्द्रध्वजोच्छ्रयं यत्र पूर्वस्यां दिशि वै कृतम् ॥ ३९ ॥
इन्द्रध्वजमिति ख्यातं तीर्थं चैवातिमुक्तिदम् ।
तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ४० ॥
ततो हरौ निवेद्याशु यात्राफलमनुत्तमम् ।

चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा पञ्चतीर्थाख्यकुंडके ॥ ४१ ॥

अरिष्ट राधाकुण्डों में स्नान करने से राजसूय अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है, इसमें विचार न करना चाहिए ॥ ३७ ॥ गाय, मनुष्य ब्रह्म-हत्या का पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है । मोक्षराज नामक तीर्थ मनुष्यों को मुक्ति देने वाला है ॥ ३८ ॥ जिसके केवल दर्शन से ही सब पापों से मुक्ति होती है । पूर्व दिशा में मुक्ति देने वाला 'इन्द्रध्वज' नामक तीर्थ है । वहाँ स्नान करने वाले स्वर्ग गमन करते हैं । मृत्यु प्राप्त करने वालों का पुनरावर्तन नहीं होता ॥ ३९-४० ॥ इसके पश्चात् श्रीकृष्ण को यात्रा का फल अर्पित करना चाहिए । आरम्भ में चक्रतीर्थ में स्नान करके अन्त में पञ्चतीर्थ कुंड में स्नान करना चाहिए ॥ ४१ ॥

समाप्य तीर्थयात्रां च रात्रौ जागरणं तथा ।
गोवर्द्धने च कर्तव्यं महापातकनाशनम् ॥ ४२ ॥
एकादश्यां तदा रात्रौ कृत्वा जागरणं शुभम् ।
द्वादश्यामुषसि स्नात्वा पिण्डं निर्वाप्य शक्तितः ॥ ४३ ॥
पितृणां मुक्तिदं तेषां य एवं कुरुते नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ४४ ॥
एतत्ते कथितं भद्रे अन्नकूटपरिक्रमम् ।
यथानुक्रमयोगेन तथाषाढ़ेऽपि चोच्यते ॥ ४५ ॥
य एतच्छृणुयाद्भक्तया तीर्थानुक्रमणः हरेः ।
गोवर्द्धनस्य माहात्म्यं गंगास्नानफलं लभेत् ॥ ४६ ॥

इति अन्नकूटपरिक्रम प्रभावो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

तीर्थयात्रा पूर्ण करके गोवर्धन में रात्रि जागरण पापनाशक है ॥ ४२ ॥ एकादशी की रात्रि को जागरण करके द्वादशी को प्रातः ही स्नान करके शक्ति के अनुसार पितृरों को पिण्ड देकर जो मनुष्य इस प्रकार यात्रा करता है, वह पाप मुक्त होकर परम् ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥ ४२-४४ ॥ हे भद्रे ! इस प्रकार तुमसे अन्नकूट परिक्रमा का विधान कहा । इसी क्रम से आषाढ़ में भी यात्रा होती है ॥ ४५ ॥ जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के इस तीर्थ की प्रदक्षिणा और गोवर्धन का माहात्म्य सुनता है, उसे गंगा में स्नान का फल प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

अन्नकूटपरिक्रमप्रभाव नामक तेरहवाँ अध्याय संपूर्ण ॥

❀ ❀ ❀

चतुर्दशोऽध्यायः

श्री वाराह उवाच –

अतः परं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
यथावृत्तं प्रतिष्ठाने दक्षिणापथ मण्डले ॥ १ ॥
सुशीलो नाम वैश्यस्तु तस्मिन्वसति पत्तने ।
धनधान्यसमृद्धस्तु बहुपुत्रः कुटुम्बवान् ॥ २ ॥
कुटुम्बभरणासक्तो नित्यकालं हि तिष्ठति ।
स्नानं दानं जपं होमं देवार्चां न करोति सः ॥ ३ ॥
क्रयविक्रयसक्तस्य कालो दीर्घो गतस्तदा ।
कदाचिदपि पापोऽसौ न साधुगमनं गतः ॥ ४ ॥
न तेन धर्मश्रवणं कदाचिदपि संश्रुतम् ।
देवानां ब्राह्मणानां च भक्तिस्तस्य न विद्यते ॥ ५ ॥

हे पृथ्वी ! इसके पश्चात् मथुरा के दक्षिण में स्थित स्थान पर जो कुछ घटित हुआ, उसके संबंध में बताता हूँ, उसको सुनो ॥ १ ॥ उस नगर में सुशील नामक वैश्य निवास करता था । वह धन-धान्य से सम्पन्न और अनेक पुत्र-पौत्रों से युक्त था ॥ २ ॥ वह नित्य प्रति अपने परिवार के भरण-पोषण में ही संलग्न रहता था, न कभी तीर्थ स्नान किया, न दान, जप, होम किया और न ही देवता की पूजा की ॥ ३ ॥ अपने व्यापार में ही संलग्न रहने वाले उस वैश्य का बहुत सा समय व्यतीत हो गया । उस पापी ने कभी भी सज्जनों की संगति प्राप्त नहीं की ॥ ४॥ कभी भी धार्मिक उपदेशों का श्रवण नहीं किया । देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति उसकी भक्ति नहीं थी । न कभी देवताओं की भक्ति करता, न ब्राह्मणों का सत्कार ॥ ५ ॥

आत्मोदरनिमित्तं हि पापं च कुरुते सदा ।
गच्छन्तं बहुकालं च न तं बुध्यति पापकृत् ॥ ६ ॥
न तस्य जायते बुद्धिर्दानं दातुं कदाचन ।

तस्यैवं वसतस्तत्र प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे ॥ ७ ॥
धनयुक्तोऽपि पापोऽसौ न ददाति कदाचन ।
नैवान्यमतिदातारं शक्नोति च निरीक्षितुम् ॥ ८ ॥
स तु कालेन महता कुटुम्बासक्तमानसः ।
कदाचिद्दैवयोगेन साध्वीं भार्यां प्रियान्सुतान् ॥ ९ ॥
त्यक्त्वा जगाम निधनं प्रेतत्वं समुपागतः ।
निरुदकेषु देशेषु विच्छायेषु वनेषु च ॥ १० ॥

अपने उदर की पूर्ति हेतु वह सदैव पाप करता था । वह पापी बीतते हुए समय को नहीं जान पा रहा था ॥ ६ ॥ दान देने में कभी उसमें बुद्धि उत्पन्न नहीं हुई । उस नगर में इस प्रकार निवास करते हुए धन युक्त होने पर भी उस पापी ने कभी दान नहीं किया । किसी दूसरे दानी को भी देख नहीं सकता था ॥ ८ ॥ इस प्रकार गृह कुटुम्ब में आसक्त रहते हुए अचानक पतिव्रता पत्नी और प्रिय पुत्रों को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हुआ तथा प्रेत बनकर जल रहित स्थानों और छाया रहित जंगलों में ॥ ६-१० ॥

परिभ्रमन्क्षुधाविष्टो मरुदेशं गतोऽपि सः ।
तत्रैव च कृतावासो बहुकालं स वै वणिक् ॥ ११ ॥
कदाचिद्दैवयोगेन तत्र सार्थ उपागतः ।
तस्य मध्ये तु वणिजो मथुरायां विनिःसृताः ॥ १२ ॥
गते सार्थे तु स वणिक् तं वृक्षं समुपाश्रितः ।
तत्रैव वसति प्रेतो रौद्ररूपो भयानकः ॥ १३ ॥
दीर्घदंष्ट्रः सुविकटो ह्रस्वबाहुर्विभीषणः ।
महाहनुर्विशालाक्षो विडालसदृशाननः ॥ १४ ॥
अथ कालेन बहुना दैवयोगेन भामिनी ।
तत्राजगाम कश्चित्तु क्रयविक्रयकारकः ॥ १५ ॥

घूमते हुए भूख से व्याकुल होकर रेगिस्तान में भटकने लगा । उस वणिक् ने वहाँ बहुत समय तक निवास किया । सौभाग्य से वहाँ अकस्मात् ही तीर्थ यात्रियों का समूह आया । उसमें से कुछ वणिक् मथुरा चले गये । यात्री दल के चले जाने पर वणिक् ने एक वृक्ष का आश्रय लिया । उसी पर अति भयंकर आकृति वाला, लम्बी दाढ़ों से युक्त विकट, छोटी भुजाओं के कारण

भयंकर, विशाल ठोड़ी, बड़ी आँखों, विडाल के समान मुख वाला प्रेत रहता था ॥ ११-१४ ॥ बहुत दिन के बाद हे भामिनी ! वहीं पर भाग्य से एक क्रय-विक्रय करने वाला (खरीद-बेच करने वाला) व्यक्ति आया ॥ १५ ॥

तं दृष्ट्वा दुःखः प्रेतश्चातिहर्षेण संयुतः ।
तत्राजगाम नृत्यन् स इदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥
भक्ष्यभूतो ममाद्य त्वं क्व भवान्यातुमिच्छति ।
प्रेतस्य वचनं श्रुत्वा सोऽतिभीतो द्रुतं गतः ॥ १७ ॥
गच्छन्तं तं गृहीत्वा स प्रेतो वचनमब्रवीत् ।
मम त्वं विहितो भक्ष्यः स्वयं प्राप्तोऽसि मानव ॥ १८ ॥
मांसं ते भक्षयिष्यामि पिबामि तव शोणितम् ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य वणिग्वाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥
कुटुम्बभरणार्थाय सम्प्राप्तो दुर्गमाटवीम् ।
वृद्धः पिता मम गृहे माता पत्नी पतिव्रता ॥ २० ॥

उसको देखकर हर्षित हुआ प्रेत नृत्य करते हुए बोला — आज तुम मेरा भोजन बनकर आये हो, कहाँ जाना चाहते हो, प्रेत की वाणी सुनकर भयभीत वह वैश्य भागने लगा ॥ १६-१७ ॥ भागते हुए उसको पकड़कर वह प्रेत बोला — अरे मनुष्य ! तुम स्वयं ही मेरा भोजन बनकर आये हो ॥ १८ ॥ मैं तुम्हारा मांस खाऊँगा और रक्त पिऊँगा । उस प्रेत की वाणी सुनकर वैश्य बोला — परिवार के पोषण के लिए इस घोर वन में आया हूँ । घर में बूढ़े माता-पिता और पतिव्रता पत्नी है ॥ १६-२० ॥

मयि सम्भक्षिते रक्षः कुटुम्बं हि मरिष्यति ।
ततो वचनमाकर्ण्य प्रेतो वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥
कस्मात्स्थानात्समायातः सत्यं ब्रूहि महामते ॥ २२ ॥

विभुरुवाच —

गोवर्धनो गिरिवरो यमुना च महानदी ।
तयोर्मध्ये पुरी रम्या मथुरा लोकविश्रुता ॥ २३ ॥
तस्यां वसाम्यहं प्रेत पितृपैतामहे गृहे ।
तस्य मे वसतो नित्यं यद्द्रव्यं पूर्व सञ्चितम् ॥ २४ ॥

तत्सर्वं तस्करैर्नीतं क्षीणवित्तो अभवं तदा ।
स्वल्पं वित्तं गृहीत्वाहं समायातो मरुस्थलम् ॥ २५ ॥
तव दृष्टिपथं यातो यत्कार्यं तत्कुरुष्व मे ॥ २६ ॥

हें राक्षस ! मेरा भक्षण किये जाने पर कुटुम्बियों की मृत्यु हो जायेगी । उसकी बात सुनकर प्रेत बोला – हे बुद्धिमान् ! मुझे सत्य बात बताओ तुम कहाँ से आये हो ? ॥ २२ ॥

वैश्य ने कहा – हे प्रेत ! गोवर्धन पर्वत और महानदी यमुना के बीच में सुन्दर मथुरा पुरी में स्थित पैतृक गृह में रहता हूँ । वहाँ रहकर मैंने जो कुछ धन एकत्रित किया था, उसे चोर चुराकर ले गये और मैं निर्धन हो गया । थोड़ा सा धन लेकर व्यापार के लिए इस मरुस्थल में आया हूँ ॥ २३-२५ ॥ तुम्हारी दृष्टि मुझ पर पड़ गई है, अब जो तुम कर सकते हो, वह करो ॥ २६ ॥

प्रेतोवाच –

न त्वां खादितुमिच्छामि कृपा मे जायते त्वयि ।
समयेन हि मोक्ष्यामि कुरुष्व वचनं मम ॥ २७ ॥
निवृत्य गच्छ मथुरां मम कार्यार्थसाधकः ।
तत्र गत्वा त्वया कार्यं यत्कर्तव्यं वदामि तत् ॥ २८ ॥
स्नानं कृत्वा तु विधिवत् कूपे चातुःसमुद्रिके ।
पिण्डदानं कुरुष्व त्वं मम नाम्ना प्रयत्नतः ॥ २९ ॥
स्नानस्य च फलं देहि ततो गच्छ यथासुखम् ।
प्रेतवाक्य ततः श्रुत्वा विभुर्वचनमब्रवीत् ॥ ३० ॥
नाहं यास्यामि मथुरां द्रव्याभावे कथंचन ।
भक्षयस्व शरीरं मे ततस्तृप्तिमवाप्स्यसि ॥ ३१ ॥

प्रेत बोला – मुझे तुम पर दया उत्पन्न हो रही है । अतः खाऊँगा नहीं । यदि मेरे वचन का पालन करोगे तो एक शर्त पर तुम्हें छोड़ दूँगा ॥ २७ ॥ मेरा कार्य सिद्ध करने के लिए मथुरा लौटकर जाओ । वहाँ जाकर जो करना है, वह तुम्हें बताता हूँ । चतुःसामुद्रिक कूप में स्नान करके, मेरा नाम लेकर विधिपूर्वक पिण्डदान करो । उस स्नान का फल मुझे देना । अब सुखपूर्वक जाओ । प्रेत के वचन सुनकर वह वैश्य बोला – धन का अभाव होने के कारण किसी प्रकार भी मथुरा नहीं जाऊँगा । अतः मेरे शरीर का भक्षण करो, जिससे तुम तृप्त हो सकोगे ॥ २८-३१ ॥

प्रेतोवाच –

गृहे बहुधनं तेऽस्ति त्वं गच्छ मम सत्कुरु ।
आस्ते धनमपर्याप्तं गच्छ त्वं मा विलम्बय ॥ ३२ ॥

विभुरुवाच –

गृहे मम धनं नास्ति यत्त्वया समुदीरितम् ।
गृहशेषं मम धनं न चान्यत्तत्र विद्यते ॥ ३३ ॥
पितृपैतामही कीर्तिरविक्रेया हि सा मया ।
प्रेतः प्रहस्य सानन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
अस्ति चैव धनं प्रोक्तं यन्मया त्वद् गृहे विभो ।
सुवर्णभारो गर्तस्थो गृहे तिष्ठति सञ्चितः ॥ ३५ ॥
निवर्त गच्छ सन्तुष्टः सुहृदां प्रीतिवर्धन ।
एवं द्रक्ष्यामि ते मार्गं मथुरा येन गम्यते ॥ ३६ ॥

प्रेत बोला – तुम्हारे घर में बहुत धन है, अतः मेरा प्रिय कार्य करो । जाओ, देर मत करो ॥ ३२ ॥ वैश्य बोला – मेरे घर में धन नहीं, केवल मेरा घर ही बचा है और कोई धन नहीं है । वह घर पैतृक कीर्ति है, जो मेरे द्वारा बेची नहीं जा सकती । प्रेत ने हँसकर आनन्द पूर्वक कहा – हे वैश्य ! जैसा मैंने कहा उसके अनुसार तुम्हारे घर में धन है । एक गड्ढे में स्वर्ण राशि एकत्र करके रखी हुई है ॥ ३३-३५ ॥ मित्रों की प्रीति बढ़ाने वाले, संतुष्ट होकर लौट जाओ । जिस रास्ते से तुम्हें मथुरा जाना है, वह तुम्हें दिखाता हूँ ॥ ३६ ॥

सूतोवाच –

वणिक् हृष्टमना भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ।
इमामवस्थां सम्प्राप्य कथं ज्ञानसमुद्भवः ॥ ३७ ॥
ततः स कथयामास यद्वृत्तं हि पुरातनम् ।
प्रतिष्ठाने पुरवरे विष्णोरायतनं महत् ॥ ३८ ॥
प्रभातसमये तत्र विष्णोरायतने शुभे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र समागताः ॥ ३९ ॥
वाचकस्तत्र पठति कथां पौराणिकीं शुभाम् ।
मम मित्रं च तत्रैव नित्यकालं च गच्छति ॥ ४० ॥

तस्मिन्काले तु मित्रेण नीतोऽहं विष्णुमन्दिरम् ।
अत्यादरेण महता सन्तोष्य च पुनःपुनः ॥ ४१ ॥

सूत बोले – वैश्य ने प्रसन्न होकर कहा – इस प्रेत अवस्था को प्राप्त करके ऐसा दिव्य ज्ञान तुम्हें कैसे हुआ ॥ ३७ ॥ तब प्रेत ने अपना सब वृत्तान्त कहा कि उत्तम नगर मथुरा में विष्णु का विशाल मंदिर था । प्रातःकाल वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एकत्रित हुए । वहाँ एक कथावाचक पुराणों की पवित्र कथा सुना रहे थे । मेरा एक मित्र भी वहाँ नित्य जाता था, वह मुझे भी अपने साथ ले गया, अत्यधिक सम्मानपूर्वक बार-बार संतुष्ट करके ॥ ३८-४१ ॥

मित्रेण सह तत्रैव तस्य पार्श्वे व्यवस्थितः ।
श्रुतो मया ततः कूपः पुण्योऽयं पापनाशनः ॥ ४२ ॥
समुद्राः किल तिष्ठन्ति चत्वारोऽत्र समागताः ।
तस्य कूपस्य माहात्म्यं श्रुतं तत्र महत्फलम् ॥ ४३ ॥
वाचकाय ततो दानं दत्तं सर्वैर्महाजनैः ।
मित्रेण प्रेरितो दाने मया मौनं समाश्रितम् ॥ ४४ ॥
मित्रेण च पुनः प्रोक्तं यथाशक्तया प्रदीयताम् ।
तदा मित्रसङ्गेन दत्तो वै स्वर्णमाषकः ॥ ४५ ॥
ततः कालेन महता गतो वैवस्वतक्षयम् ।
वैवस्वतनियोगेन ततोऽहं पूर्वकर्मभिः ॥ ४६ ॥

मित्र के साथ वहाँ बैठ गया । मैंने सुना कि वहाँ एक पाप नष्ट करने वाला पवित्र कूप है ॥ ४२ ॥ चारों समुद्र यहाँ कूप में प्रतिष्ठित होते हैं । इस तरह उसका माहात्म्य और फल श्रवण किया ॥ ४३ ॥ सभी श्रेष्ठ पुरुषों ने कथावाचक को धन दान किया । मित्र के प्रेरित करने पर भी मैं मौन ही रहा अर्थात् कुछ नहीं किया ॥ ४४ ॥ मित्र ने पुनः कहा कि यथाशक्ति कुछ दो । तब मित्र की संगति के कारण सोने की मोहर (८ रत्ती भर) दी ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ । यमराज की आज्ञा से पूर्व कर्मों के कारण ॥ ४६ ॥

प्रेतत्वं समनुप्राप्तो दुस्तरं दुर्गमं महत् ।
न दत्तं न हुतं चापि तीर्थं नैवावगाहितम् ॥ ४७ ॥
न तर्पितास्तु पितरः प्राप्तोऽहं प्रेततां ततः ।

इत्येतत्कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ४८ ॥
गच्छ त्वं सम्मुखस्तत्र यत्र सा मथुरापुरी ।
प्रेतस्य वचनं श्रुत्वा विभुर्वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥
कथं धारयसे प्राणान् वृक्षमूलं समाश्रितः ॥ ५० ॥

प्रेतोवाच –

कथितं हि मया पूर्वं यद्वृत्तं हि पुरातनम् ।
वाचकाय तु यद्दत्तं सुवर्णस्य च माषकम् ॥ ५१ ॥

मुझे यह दुःखद प्रेतयोनि मिली । मैंने कभी यज्ञ, दान तथा तीर्थ स्नान नहीं किया । न कभी पितरों का तर्पण किया, इसलिए यह प्रेतत्व प्राप्त हुआ । जो कुछ तुमने पूछा, मैंने बता दिया ॥ ४७-४८ ॥ तुम सीधे जाओ, जहाँ मथुरापुरी है ॥ ४९ ॥ प्रेत की वाणी सुनकर वैश्य बोला – इस पेड़ की जड़ में रहकर कैसे प्राण धारण करते हो ॥ ५० ॥ प्रेत बोला – कथावाचक को जो सोने की मोहर दी थी ॥ ५१ ॥

तद्दानस्य प्रभावेण नित्यं तृप्तोऽस्मि वै विभो ।
अकामेन मया दत्तं तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ५२ ॥
प्रेतभावं गतस्यापि न मे ज्ञानस्य विभ्रमः ।
ततश्च स वणिक् श्रेष्ठ आगत्य मथुरां पुरीम् ॥ ५३ ॥
कृतं तेन च तत्सर्वं यथा प्रेतेन भाषितम् ।
प्रेतोऽसौ तेन कृत्येन मुक्तिं प्राप्य दिवंगतः ॥ ५४ ॥
एतत्ते कथितं भूमे माहात्म्यं मथुराभवम् ।
चतुःसामुद्रिके कूपे पिण्डदाने परां गतिम् ॥ ५५ ॥
तीर्थं चैव गृहे वापि देवस्थानेऽपि चत्वरे ।
यत्र तत्र मृता देवि मुक्तिं यान्ति न चान्यथा ॥ ५६ ॥

उसी के प्रभाव से मैं संतुष्ट रहता हूँ । बिना कामना किये दान देने से मुझे यह फल मिला ॥ ५२ ॥ प्रेत भाव होने पर भी ज्ञान भ्रष्ट नहीं हुआ । इसके पश्चात् उस वैश्य ने प्रेत के कथनानुसार मथुरा में जाकर सब कार्य किया । फलतः प्रेत मुक्त होकर स्वर्गगामी हुआ ॥ ५३-५४ ॥ हे पृथ्वी ! यह मथुरा का महत्व है । चतुःसामुद्रिक कूप पर पिण्डदान से परम गति प्राप्त होती

है ॥ ५५ ॥ इस तीर्थ के किसी घर, देवालय या चौराहे पर भी मृत्यु हो जाने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं ॥ ५६ ॥

अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य गच्छति ।
तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ ५७ ॥
मथुरायां कृतं पापं तत्रैव च विनश्यति ।
एषा पुरी महापुण्या यस्यां पापं न विद्यते ॥ ५८ ॥
कृतघ्नश्य सुरापश्च चौरो भग्नव्रतस्तथा ।
मथुरां प्राप्य मनुजो मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥ ५९ ॥
तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ।
तस्याधिकं भवेत्पुण्यं मथुरायां निवासिनः ॥ ६० ॥
परदाररता ये च ये नरा अजितेन्द्रियाः ॥
मथुरावासिनः सर्वे ते देवा नरविग्रहाः ॥ ६१ ॥

अन्य स्थान पर किया गया पाप तीर्थ में नष्ट होता है । तीर्थ पर किया गया पाप वज्र लेप की तरह दृढ़ हो जाता है ॥ ५७ ॥ मथुरा में होने वाला पाप वहीं नष्ट हो जाता है । यह पुरी पुण्यमयी है, जिसमें पाप को स्थान नहीं ॥ ५८ ॥ कृतघ्न, मदिरा पीने वाला, चोर और नियम भंग करने वाला मनुष्य मथुरा आकर सब पापों से मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य एक हजार युगों तक एक पैर पर खड़ा रहता है, उससे कहीं अधिक फल मथुरा निवासी प्राप्त करता है ॥ ५९-६० ॥ जो परस्त्री गमन करने वाले हैं तथा जो इन्द्रिय निग्रही नहीं हैं, वे सभी मथुरावासी मनुष्य के रूप में देवता हैं ॥ ६१ ॥

बलिभिक्षा प्रदातारस्ते मृताः क्रोधवर्जिताः ।
तीर्थस्नानरताः ये च देवास्ते नरमूर्तयः ॥ ६२ ॥
यदन्येषां सहस्रेण ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
एकेन पूजितेन स्यान्माथुरेणाखिलं हि तत् ॥ ६३ ॥
अनृग्वै माथुरो यत्र चतुर्वेदस्तथापरः ।
न च वेदैश्चतुर्भिः स्यान्माथुरेणसमः क्वचित् ॥ ६४ ॥
भवन्ति सर्वतीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥
मङ्गलानि च सर्वाणि यत्र तिष्ठन्ति माथुराः ॥ ६५ ॥

बलि भिक्षा देने वाले (भूत यज्ञ करने वाले) जो मनुष्य क्रोध रहित होकर मृत्यु प्राप्त करते हैं, जो तीर्थ-स्नान में संलग्न हैं, वे नर रूप में देवता हैं ॥ ६२ ॥ अन्यत्र एक सहस्र (हजार) श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा से जो फल मिलता है, मथुरावासी को एक ही ब्राह्मण के पूजन से वही फल प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ एक ओर वेदाध्ययन न करने वाला मथुरा निवासी है और दूसरी ओर चारों वेदों का ज्ञाता है । चारों वेदों से मथुरा निवासी की कोई समता नहीं है । अर्थात् मथुरा में निवास करने वाला वेदाध्यायी से भी बढ़कर है ॥ ६४ ॥ जहाँ मथुरावासी बैठते हैं, वहाँ पुण्यों के स्थान, मङ्गलकारी सभी तीर्थ विद्यमान रहते हैं ॥ ६५ ॥

चतुर्वेदं परित्यज्य माथुरं पूजयेत्सदा ।
सिद्धाभूतगणाः सर्वे ये च देवगणा भुवि ॥ ६६ ॥
भथुरावासिनो लोकान्पश्यन्ति च चतुर्भुजान् ।
मथुरायां ये वसन्ति विष्णुरूपा हि ते नराः ॥ ६७ ॥
ज्ञानिनः तान्हि पश्यन्ति अज्ञाः पश्यन्ति तान्न च ॥ ६८ ॥

इति मथुरामाहात्म्ये कूपमाहात्म्ये ब्राह्मणप्रभावोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

चारों वेदों के ज्ञाता को छोड़कर मथुरा निवासी का सम्मान करना चाहिए । पृथ्वी पर सिद्ध, भूत और सभी देवता मथुरा निवासी विष्णुस्वरूप मनुष्यों के दर्शन के लिए आते हैं । मथुरा में रहने वाले मनुष्य विष्णु रूप हो जाते हैं । ज्ञानी जन ही उनका दर्शन कर पाते हैं, अज्ञानी नहीं ॥ ६८ ॥

॥ ब्राह्मणप्रभाव नामक चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥